RNI NO. UTTHIN/2016/71922

POSTAL REGD NO. UA/DO/DDN/23/2017-2019

कविकुंभ

मूल्य 20 रुपये

वर्ष 02 | अंक 13 | दिसंबर 2017

कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू

इस अंक में :

रघुवीर सहाय, कुंवर नारायण, त्रिलोचन, नरेश सक्सेना पर लीलाधर जगूड़ी, डॉ ओम निश्चल, असद ज़ैदी, दिविक रमेश के शब्द। प्रो. गंगा प्रसाद विमल और अश्वघोष से विशेष बातचीत। शब्दांचल में कैलाश गौतम

गंगा तीरे संगीत साधना की सुरम्य, अद्भुत तपोभूमि

देवी संगीत आश्रम, ऋषिकेश

RNI No. UTTHIN/2016/71922

कविकुंभ

मूल्य 20 रुपए

वर्ष 02 • अंक 13 • दिसंबर 2017

दिल्ली • हरियाणा • मप्र • छत्तीसगढ़ • राजस्थान • उप्र • उत्तराखंड • हिमाचल • पंजाब • जम्मू-कश्मीर • बिहार • झारखंड • ओडिशा • प.बंगाल • असम • महाराष्ट्र • गुजरात • कर्नाटक • तमिलनाडु

शब्द-संपादकीय

कुंवर नारायण को विनम्र नमन

'साहित्य में राजनीति के दुर्गुण आ गए हैं, पर साहित्य के गुण राजनीति में नहीं।' यह कह गए हैं कवि कुंवर नारायण। जीवन में और कविता में भी, इसके कितने अर्थ निकलते हैं, और शमशेर सिंह के संकेतों में कितनी दूर तक जाते हैं, बातों-बातों में, 'कविकुंभ' को भी ऊबड़-खाबड़ यात्रा अजीबोगरीब ठसक से उसका चित्र-विचित्र अनुभव करा रही है। साहित्य में राजनीति के दुर्गुण आने की बात जितने कम शब्दों में कही गई है, उसका विस्तार छोटे-बड़े हर रचनाकार के जीवन में घट रहा है। जैसे हर कोई अपनी-अपनी चौहद्दी में घिर गया हो, व्यावहारिक सरोकारों में कोई किसी का न हो, बस शब्दों की रस्सी थामे कविता की नदी के इस पार, उस पार किसी तरह आना-जाना हो पा रहा हो। जिन्हें होना चाहिए था, एक-एककर चले जा रहे हैं, जो हैं, उन्हें हम वह सम्मान नहीं दे पा रहे हैं, उनके शब्दों को उतनी शिद्दत से अपने-अपने आसपास नहीं फैला पा रहे हैं, अपनों से साझा नहीं कर पा रहे हैं। इस दिशा में 'कविकुंभ' का प्रयास कितना अर्थवान हो पाता है, आने वाले वक्त पर है। कवि कुंवर नारायण को 'कविकुंभ' का विनम्र नमन।

ऐसे में हमारे लिए यह व्यक्तिगत 'सच' साझा करना कितना कष्टकर है, किंचित न चाहते हुए भी बताना चाहूंगी कि साहित्य की जो तीन विभूतियां बीते दो-तीन महीनों में हमारे बीच से हमेशा के लिए गईं, उससे करोड़ों पाठक ही नहीं, हर कवि-साहित्यकार की व्यक्तिगत क्षति भी हुई है। वह चंद्रकांत देवताले रहे हों, कुंवर नारायण या कृष्ण शलभ, 'कविकुंभ' की साक्षात्कार-प्रश्नावलियां उन तक धरी रह गई। क्या पता था, उनके उत्तर एक-एककर दुखद संदेश भर होकर रह जाएंगे। यद्यपि उनके शब्द हमेशा हमारे बीच रहेंगे। हिंदी जगत के लिए यह कितना आह्लादकारी है कि डॉ नामवर सिंह, प्रो.गंगा प्रसाद विमल, नरेश सक्सेना, लीलाधर जगूड़ी, माहेश्वर तिवारी, अशोक वाजपेयी, पद्मा सचदेव, राजेश जोशी, बाल स्वरूप राही, अश्वघोष, नचिकेता, चंद्रसेन विराट, डॉ शांति सुमन, अनूप अशेष, सत्यनारायण, किशन सरोज, राम सेंगर जैसे उम्रदराज श्रेष्ठ कवि-साहित्यकार हमारे बीच बने हुए हैं। हम उनकी दीघार्यु की कामना करते हैं। गत नवंबर अंक में पृष्ठ-6 पर भूलवश वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह का चित्र प्रकाशित हो जाने के लिए हम विनम्र क्षमा प्रार्थी हैं।

हम चाहते हैं कि 'कविकुंभ' के पृष्ठों पर प्रथमतः हिंदी-उर्दू के शिखर शब्द-मनीषियों का अधिकाधिक-अपठित-अनुपस्थित साहित्य अपने सुधी पाठकों तक पहुंचा सकें, पृष्ठ की सीमाएं और विविधता की अनिवार्यताएं राह रोक लेती हैं। तब भी, जितना बन पड़ रहा है, हम इस दिशा में अनवरत प्रयासरत हैं। इस अंक में डॉ ओम निश्चल और दिविक रमेश के सविस्तार 'शब्द-संस्मरण' के पीछे भी हमारा यही मूल मंतव्य रहा है। विश्वास है, इस अंक में प्रो. गंगा प्रसाद विमल से 'कविकुंभ' का शब्द-संवाद उतना ही संग्रहणीय हो, जितना कि विगत अंकों में डॉ माहेश्वर तिवारी, नरेश सक्सेना और लीलाधर जगूड़ी के साक्षात्कारों पर हमें अपने सुधी पाठकों से सुखद प्रतिक्रियाएं मिलीं, जिनका सिलसिला आज भी जारी है। विगत अंकों में प्रेमचंद, निराला की तरह इस अंक में अंतिम आवरण-पृष्ठ पर उर्दू-फारसी के महान शायर मिर्जा असद-उल्लाह बेग खां गालिब को प्रस्तुत करते हुए 'कविकुंभ' को एक बार पुनः वैसी ही गरिमा और गर्व का अनुभव हो रहा है। अंत में एक सुखद संदेश और, 'कविकुंभ' की यात्रा के एक वर्ष पूरे हो चुके हैं। दूसरे वर्ष के इस प्रथम अंक के साथ हम समस्त शब्द-मनीषियों, सुधी पाठकों के हृदय से आभारी हैं। यह अंक कैसा लगा, कृपया आपके अभिमत की सादर प्रतीक्षा रहेगी।

-रंजीता सिंह

भाषा : हिंदी आवधिकता : मासिक

संपादक
रंजीता सिंह

प्रबंध संपादक
जय प्रकाश त्रिपाठी

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि
अफरोज आलम (कुवैत)
साकिब हुरानी (नेपाल)
फहीम अख्तर (यूनाइटेड किंगडम)

मुद्रक, प्रकाशक, *संपादक रंजीता सिंह द्वारा शिवगंगा प्रिंटिंग प्रेस, 20/1, नेताजी की गली, निकट तिलक रोड, देहरादून से मुद्रित तथा 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) 248001 से प्रकाशित।

'कविकुंभ' संपर्क

डाक पता : रंजीता सिंह, 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) - 248001

E-mail: kavikumbh@gmail.com

मोबाइल : 7983168101 / 7409969078 / 7250704688

'कविकुंभ' से संबंधित विवाद का न्याय-क्षेत्र देहरादून। 'कविकुंभ' में प्रकाशित रचनाओं से संपादक की व्यक्तिगत सहमति आवश्यक नहीं। प्रकाशित रचनाओं के उपयोग से पहले संपादक, लेखक की पूर्व सहमति आवश्यक होगी।

शब्दानुक्रम

9 हिंदी आलोचना आज जितनी आसान, उतनी व्यर्थ्य : गंगा प्रसाद विमल

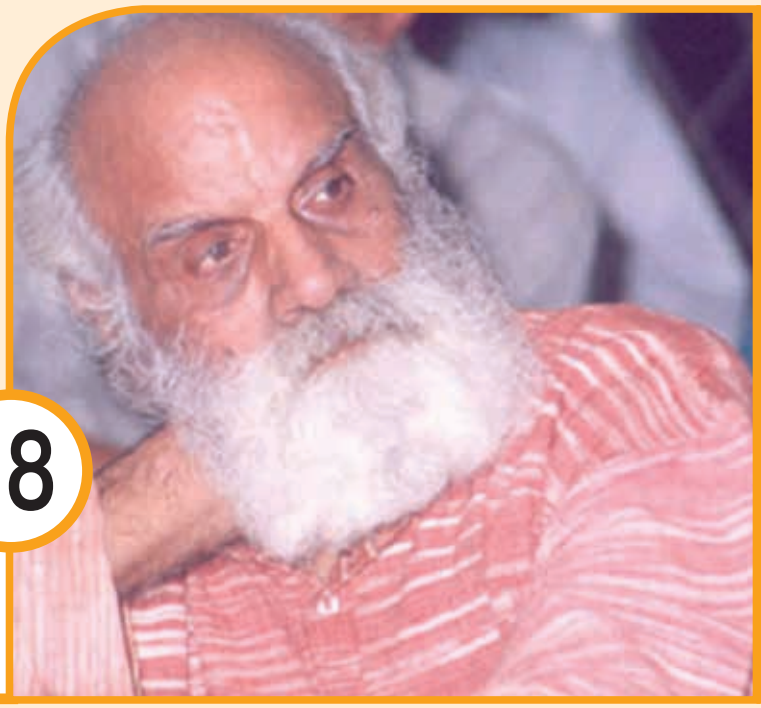

18 शमशेर के घर उस दिन बस त्रिलोचन बोलते रहे, बाकी सब सुनते रहे : दिविक रमेश

शब्द-संवाद : मरे हुए लोगों की भीड़ में 'रामदास' / लीलाधर जगूड़ी..... 27

शब्दांचल : कैलाश गौतम के तालमखाने जैसे गीत..... 37

कविताओं के लय-ताल के बीच बांसुरी में रम गए नरेश सक्सेना : डॉ ओम निश्चल

23

37

उनका जेहन अपनी जमीन के रंगों से रंगा था : असद जैदी

शब्द-सुमन : ठाकुर प्रसाद सिंह, चंद्रसेन विराट, दुष्यंत कुमार, जोश मलीहाबादी, कतील शिफाई, जॉन कीट्स, शमीम हनफी, शाहिद मीर, शीन काफ निजाम, असद जैदी, बोधिसत्व, मंगलमूर्ति, नील कमल, राजा अवस्थी, हरीलाल मिलन, वेदप्रकाश शर्मा वेद, कैलाश मनहर, कुलदीप विद्यार्थी, अमन चाँदपुरी, अशोक गुप्ता, प्रीति गुप्ता प्रियांशी

जयंती

ठाकुर प्रसाद सिंह (1 दिसंबर)

यह मेरे जीवन का जल, कमल-पात पर
हिम-बूंदों-सा टलमल रे, कितना चंचल

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी (1 दिसंबर)

इस भाँति निरन्तर जलते रहना ही अमर कहानी।
जलने में ही जीवन की रह जाती अमिट निशानी

रघुवीर सहाय (9 दिसंबर)

हर थका चेहरा तुम गौर से देखना
उसमें वह छिपा कहीं होगा गया कल

जोश मलीहाबादी (5 दिसंबर)

उफ़्फ खामोशी की ये आहें दिल को बरमाती हुई
उफ़्फ ये सन्नाटे की शेहनाई किसे आवाज दूँ

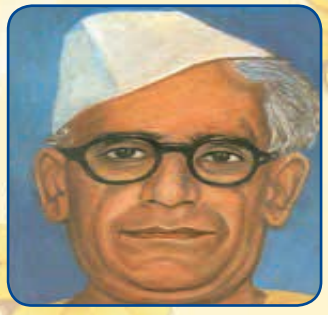

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (8 दिसंबर)

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए।

राजकमल चौधरी (13 दिसंबर)

तुमने कभी मुझे कोई गीत गाने को नहीं कहा,
क्योंकि हमारी ज़िन्दगी से बेहतर कोई संगीत न था।

भिखारी ठाकुर (18 दिसंबर)

कहाँ जइबऽ भइया? लगावऽ पार नइया,
तूँ मोर दुख देखि ल नेतर से बटोहिया।

भोलानाथ गहमरी (19 दिसंबर)

रचि गइल सिंगार सरुज-चान आसमान,
जिनगी के गीत लिखे रात भर बिहान।

कतील शिफाई (24 दिसंबर)

छ और भी साँसें लेने पर मजबूर-सा मैं हो जाता हूँ
जब इतने बड़े जंगल में किसी इंसान की खुश्बू आती है।

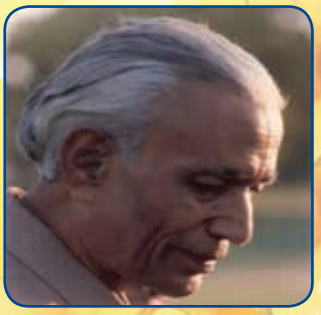

धर्मवीर भारती (25 दिसंबर)

जिन्दगी की डाल पर, कण्टकों के जाल पर
काश एक फूल-सा मैं भी अगर फूलता !

मिर्जा गालिब (27 दिसंबर)

हर कदम दूरी-ए-मंज़िल है नुमायाँ मुझसे,
मेरी रफ़्तार से भागे है बयाबाँ मुझसे।

पुण्यतिथि

बेकल उत्साही (3 दिसंबर)

किसी कुटिया को जब ₹बेकल₹महल का रूप देता हूँ,
शंहशाही की ज़िद मेरा अंगूठा काट जाती है।

मजाज लखनवी (5 दिसंबर)

गुनगुना के मस्ती में साज ले लिया मैंने।
छेड़ ही दिया आखिर नगमा-ऐ-वफा मैंने।

कैलाश गौतम (9 दिसंबर)

गीत न फूटा, हँसी न लौटी सब कुछ मौन रहा।
पगडंडी पर आगे-आगे जाने कौन रहा।

त्रिलोचन (9 दिसंबर)

हाथ मैंने उँचाए हैं उन फलों के लिए
जिनको बड़े हाथों की प्रतीक्षा है।

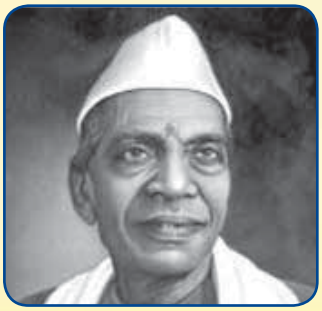

मैथिलीशरण गुप्त (12 दिसंबर)

मृषा मृत्यु का भय है
जीवन की ही जय है।

शैलेन्द्र (14 दिसंबर)

पूछ रहे हो क्या अभाव है,
तन है केवल प्राण कहाँ है?

भारत भूषण (17 दिसंबर)

ये कथाएं उग रही हैं नागफन जैसी अबोई
सृष्टि में है और कोई, दृष्टि में है और कोइ

अदम गोंडवी (18 दिसंबर)

'अदम' सुकून में जब कायनात होती है।
कभी-कभार मेरी उससे बात होती है।

रामप्रसाद बिस्मिल (19 दिसंबर)

सितम ऐसा नहीं देखा जफा ऐसी नहीं देखी,
वो चुप रहने को कहते हैं जो हम फरियाद करते हैं।

सुमित्रानंदन पंत (28 दिसंबर)

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम।

दुष्यंत कुमार (30 दिसंबर)

बहुत सँभाल के रक्खी तो पाएमाल हुई।
सड़क पे फेंक दी तो ज़िंदगी निहाल हुई।

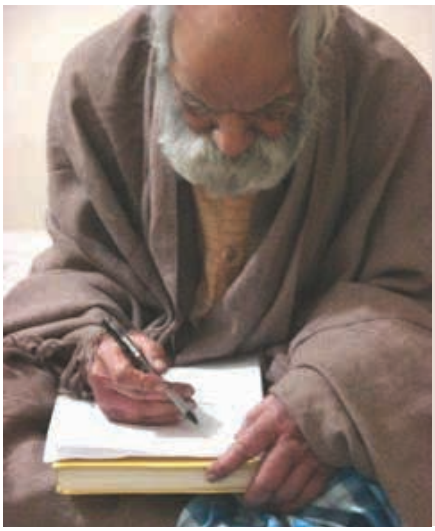

उस जनपद का कवि हूँ

त्रिलोचन

उस जनपद का कवि हूँ, जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता,
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता,
कविता कुछ भी दे सकती है। कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है। वह उदासीन बिलकुल अपने से,
अपने समाज से है; दुनिया को सपने से
अलग नहीं मानता, उसे कुछ भी नहीं पता
दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँची; अब समाज में
वे विचार रह गये नही हैं जिन को ढोता
चला जा रहा है वह, अपने आँसू बोता
विफल मनोरथ होने पर अथवा अकाज में।
धरम कमाता है वह तुलसीकृत रामायण
सुन पढ़ कर, जपता है नारायण नारायण।

नए कवि का दुख

केदारनाथ सिंह

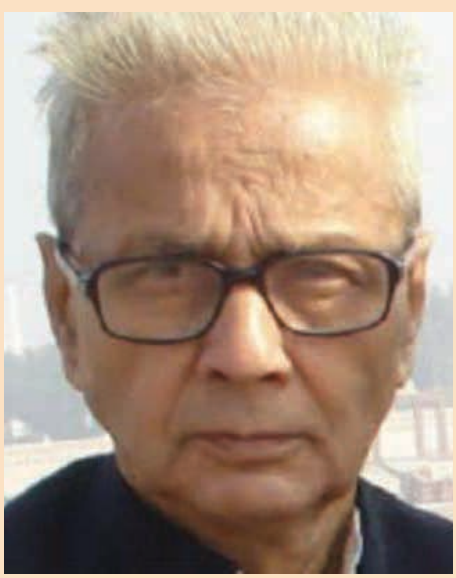

दुख हूँ मैं एक नये हिन्दी कवि का
बाँधो, मुझे बाँधो, पर कहाँ बाँधोगे
किस लय, किस छन्द में?

ये छोटे छोटे घर, ये बौने दरवाजे
ताले ये इतने पुराने
और साँकल इतनी जर्जर
आसमान इतना जरा सा
और हवा इतनी कम कम
नफरतयह इतनी गुमसुम सी
और प्यार यह इतना अकेला
और गोल-मोल
बाँधो
मुझे बाँधो
पर कहाँ बाँधोगे
किस लय, किस छन्द में?

क्या जीवन इसी तरह बीतेगा
शब्दों से शब्दों तक
जीने
और जीने और जीने और जीने के
लगातार द्वन्द्व में?

छंद को बिगाड़ो मत

ओम प्रकाश आदित्य

छंद को बिगाड़ो मत, गंध को उजाड़ो मत,
कविता-लता के ये सुमन झर जाएंगे।
शब्द को उघाड़ो मत, अर्थ को पछाड़ो मत,
भाषण-सा झाड़ो मत गीत मर जाएंगे।
हाथी-से चिंघाड़ो मत, सिंह से दहाड़ो मत,
ऐसे गला फाड़ो मत, श्रोता डर जाएंगे।
घर के सताए हुए आए हैं बेचारे यहाँ,
यहाँ भी सताओगे तो ये किधर जाएंगे।

हिंदी आलोचना आज जितनी आसान, उतनी व्यर्थ्य : गंगा प्रसाद विमल

छंद में कबीर, कालिदास, कुंवर नारायण जैसे सृजन का महत्तम सत्य होना चाहिए

'कविकुंभ' की संपादक **रंजीता सिंह** से 'शब्द-संवाद' में हिंदी के जाने-माने साहित्यकार प्रो.गंगा प्रसाद विमल कहते हैं - 'छंद एक कठिन साधना है। हमारे समय में बहुत सारे लोग छंदों की ओर लपकते हैं लेकिन आज तक इक्का-दुक्का में ही छंद-सिद्धि रही है। कविता झिझोड़ कर बहुत सारे शब्द-रूप निर्मित करती है। सृजन और अभ्यास मिलकर मनुष्य जाति के लिए अनिवार्य सी वृत्ति का निर्माण करते हैं ताकि वो भाषा जब तक बोली जाए, तब तक रचना का सत्य बना रहे लेकिन यह बहुत कठिन है। अतिश्रमसाध्य है। हिंदी में इसका अभ्यास छूट गया है। छंदोबद्ध रचना के लिए निराला जैसा साधक होना जरूरी है। आज स्वच्छंदता का वातावरण है। अभ्यास गेयात्मक बनाने के लिए करते हैं। छंद को सिद्ध करना बहुत कठिन है। उसमें कबीर और कालिदास जैसी रचना का महत्तम सत्य और कुंवर नारायण जैसी दृष्टि संपन्नता होनी चाहिए। जो शास्त्रीय संगीत के साधक-आराधक हैं, वे इसकी पुष्टि कर सकते हैं। इसी तरह आलोचना का भी एक गहन दायित्व है। आजकल हिंदी में कृति-स्तुति कर देना ही आलोचना-कर्म हो गया है। यह कर्म जितना ज्यादा आसान होता गया, उतना ज्यादा व्यर्थ्य होता गया है। इसीलिए आज आलोचना के पाठ-कुपाठ पर लोग अब ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। वे जिम्मेदार आलोचक होते हैं, जो आलोच्य कृति के अलावा बहुत सारी दूसरी चीजों का भी गंभीर ज्ञान रखते हैं। मैनेजर पांडेय पद के छोटे से हिस्से से रचना का पूरा सामाजिक-सांस्कृतिक रूप उपस्थित कर देते हैं।'

प्रश्न : हिंदी कविता के इतिहास, और अपने समय के साथ उसके संबंधों के निरूपण में क्या कहीं न कहीं कोई गहरी चूक हुई है? केवल 'आसानी से याद' रखे जाने की कसौटी को अच्छी कविता की परिभाषा और पहचान के साथ नाभि-नालबद्ध कर देना उचित है? क्या यह सवाल सही है कि छंद को कविता की अनिवार्य पहचान के रूप में लोक-चेतना में स्थापित कर दिया जाना भी कविता की घटती लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण हो सकता है?

गंगा प्रसाद विमल : यह प्रश्न इसलिए उलझा हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि हिंदी के जन्म के बारे में जो प्रचलित भ्रांतियां हैं, पहले उनसे छुटकारा पाया जाए। असल में हिंदी का जन्म विभिन्न भाषाओं के अंतर भाषायी संवाद के लिए हुआ है। हमारे देश में बहुभाषी प्रदेश हैं। हिंदी का जन्म एक दबाव के कारण हुआ है। ऐसी प्रवृत्ति बन गई कि उस दबाव के हम मूलार्थ नहीं समझ पाए। अगर हम उसके मूलार्थ, जड़ों को आज पलटें तो पाएंगे कि तमाम भारतीय भाषाओं के सहयोग से हिंदी का जन्म हुआ है। जब तक ये तथ्य, तत्व के रूप में उपस्थित नहीं होगा, तब हम न्याय नहीं कर पाएंगे। हिंदी सृजन के साथ भी यही हुआ है। हिंदी का जो सृजन हुआ है, जिसे हम क्षेत्रीय सृजन कहते हैं, अलग-अलग क्षेत्रों से जो लोग आए हैं, वो अपनी अपनी क्षेत्रीय बोलियों के प्रभाव को भी ले आए हैं। और उसे अगर हम समझ पाएं, छानबीन कर पाएं, जब उसकी संगीतमयता को हम अपने छंदों में जान सकें, खोज सकें, तब यह चूक नहीं कही जाएगी।

हिंदी की जो पाठकीय स्वीकृति है, सारे-के-सारे उपयोगकर्ता उसके रहस्य को जान पाएं, कि कहां है, क्या है, क्या चूक हुई है। अभी कोशिश नहीं हुई है। आज एक तरह से स्वच्छंदता का सा वातावरण है। ये मानना चाहिए कि कोई चूक हुई है। उसकी जो वैयाकरणिक स्थिति है, वह भी उतनी वैज्ञानिक, उतनी ठीक नहीं है, जितनी संस्कृत की है। संस्कृत धातु रूप में विन्यास के साथ शब्दों को समेटती है। हिंदी के साथ ये चीज अभी शेष है। खोज होनी चाहिए कि हिंदी पर बाकी क्षेत्रीय भाषाओं का कितना प्रभाव पड़ा है, क्या प्रभाव पड़ा है। यह बात सामने आए तो बात बने। हिंदी क्षेत्रीय भाषाओं के बहुमिलन से उत्पन्न एक भाषा है। भाषा के धरातल पर सबसे ज्यादा जटिल काम कविता है। कैसे उसमें संगीत का विन्यास हो, उसमें शब्दों की मूल प्रवृत्ति क्या हो, उसको ठीक-ठीक जाने बिना अर्थ संप्रेषित नहीं होता। यही कारण है कि बहुत सारे सृजन में अराजकता प्रतीत होती है। मूल प्रवृत्ति को जानना एक बहुत कठिन, बहुत श्रमसाध्य कार्य है। इसे करना चाहिए, लेकिन, सवाल है करेगा कौन?

जहां तक 'अच्छी' कविता, याद हो जाने वाली कविता का प्रश्न है, उसके लिए अनिवार्य नहीं कि वह जस की तस स्मृति में सहजता से समा जाए। पहले तो 'अच्छी' का पारिभाषिक रूप देख लिया जाए। आर्य साहित्य में कुछ सूक्तियां हैं, वह सूक्तियां एक तरह से अर्थ देती हैं लेकिन

वह सूक्तिदायिकता कविता नहीं, वह एक तरह का उपदेशात्मक विवरण है। उस उपदेशात्मक विवरण में कोई सत्य दिखाई नहीं देता है। कालिदास की उक्ति है- 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्।' अक्सर आयुवेर्दाचार्य इसका प्रयोग करते हैं। इस उक्ति में कालिदास ने एक महत्तम सत्य को उद्घाटित किया है कि शरीर के माध्यम से सारे संसार के काम होते हैं। वह सृजनात्मक मस्तिष्क का महत्तम शोध है, जो उदघाटित हुआ है, तो आसानी से किसी छंद में याद रखी जाने वाली पंक्तियां महत्तम श्रेष्ठ काव्य हैं, यह सही नहीं है। हमारे यहां याद करने के लिए भी छंदों का प्रयोग किया गया है। जैसे आयुर्विज्ञान में कड़वे विषय को सैद्धांतिकों ने छंदों में लिखा है। छंदों में लिखना आसान काम है, मुश्किल काम नहीं है। मुश्किल काम है, शब्द को उसके सर्जनात्मक सत्य से उद्घाटित करना। जो आसानी से संभव नहीं होता है। बहुत कम होता है। हमारे यहां प्रचलन हो गया है कि यह आसान काम नहीं है। औषधि विज्ञान को छंदों में लिखना आसान काम नहीं है। जैसे हमारे एक बड़े कवि, जिनका अभी देहांत हुआ है, कुंवर नारायण, उन्होंने अपनी एक कविता गेयात्मक रूप में लिखी है, उसकी पंक्तियां हैं-

'हम एक इशारा हैं, दो भिन्न दिशाओं के,
हमसे होकर सदियों के प्रश्न गुजरते हैं।'

इसे किसी छंद विशेष की रचना मान लें, इसके लिए आप स्वतंत्र हैं, लेकिन इससे कविता के एक लक्ष्य की, एक विजनरी व्यक्ति के दृष्टिकोण की बात सामने आती है, जो लक्षित समय के उस पटु स्वरूप को, विंब को पहचानता है। छंद का लयात्मक होना, संगीतात्मक होना तो अनिवार्य है ही, लेकिन उससे ज्यादा जरूरी है, कविता में लक्ष्य को प्राप्त करना, अन्यथा यह जीवन पर्यंत अभ्यास का कर्म रह जाती है। हम जीवन पर्यंत अभ्यास करते रहते हैं। आसानी से याद रखने की काव्य-वृत्ति तो बाल स्वभाव के लिए ठीक है लेकिन काव्य उससे अधिक गहरे में अन्वेषित करने वाली चीज है। उसका स्तर इतना ऊपरी नहीं होता है। देखिए कि सबसे ज्यादा गेयता दोहे में है लेकिन सवाल है, वह दोहा अपने लक्ष्य तक पाठक को ले जाता है या नहीं, कोई महत्तम अर्थ देता है या नहीं। जैसे कबीर का एक दोहा है-

'दस द्वारे का पिंजरा, तामे पंछी का पौन।
रहे को अचरज है, गए अचम्भा कौन॥'

कबीर का अपना लक्ष्य है उस अनहद ध्वनि को सुनना, जो आसान नहीं है। इस दोहे के अर्थ को लें तो इसमें ऐसी दृष्टि संपन्नता लय के कारण नहीं, सृजनात्मक मस्तिष्क की अंतःसंघर्षों से उत्पन्न विश्व दर्शन के साथ शोधपरक एकाग्रता के कारण संभव हुई है। कविता एक बड़े दुष्कर क्षेत्र में प्रवेश का काम है। असली कविता कठिन अंतर्संघर्ष की रचना होती है।

छंद एक कठिन साधना है। हमारे समय में बहुत सारे लोग छंदों की ओर लपकते हैं लेकिन आज तक इक्का-दुक्का, निराला में ही छंद की सिद्धि दिखती है। उनके अलावा एक अन्य बंगाली कोई दलित युवा कवि रहे हैं, जिनका नाम याद नहीं आ रहा है। उस तरह की छंद-सिद्धि बहुत कम ही लोगों में संभव रहती है। अभ्यास करते रहते हैं। अभ्यास गेयात्मक बनाने के लिए करते हैं। छंद को सिद्ध करना बहुत कठिन है। जो शास्त्रीय संगीत के साधक-आराधक हैं, वे इसकी पुष्टि कर सकते हैं। हमारे यहां हिंदी में ये अभ्यास छूट गया है। पहले स्कूलों में इस तरह का अभ्यास कराया जाता था। कविता की जो सृजन यात्रा है, उसमें छंद बड़ा सहयोगी है। याद रहता है। ये सुविधा तो है, स्मृति में बने रहने की सुविधा परंतु जो सबसे बड़ा झगड़ा है, वो ये कि कविता नामक विधा में बहुत सारे प्रयोग हुए हैं। आसान प्रयोग बहुत हुए हैं। कविता झिझोड़ कर बहुत सारे शब्द-रूप निर्मित करती है। सृजन और अभ्यास मिलकर मनुष्य जाति के

उत्तराखंड के रमणीय उपनगर उत्तरकाशी के मूल निवासी डॉ गंगा प्रसाद विमल वैसे तो हिन्दी साहित्य में 'अकहानी' आंदोलन के प्रतिनिधि-कथाकार के रूप में जाने जाते हैं लेकिन कविता के साथ सुपठनीय अनुवादक, गंभीर चिंतक के रूप में भी उनकी दुनियाभर में ख्याति है। कविता जैसा ही उनका सहज-सादा-संजीदा व्यक्तित्व है तो रचनाओं में वन-हिमनद सहित प्रकृति और मनुष्य के अंतसंर्बंधों का सरस आच्छादन। प्रकृतिक निश्छलता इनके सृजन का केंद्रीय स्वभाव है। संभवत: बहुतों को ज्ञात न हो, वह हिंदी के उन विरले ख्यात साहित्यकारों में हैं, जिनसे दिविक रमेश जैसे देश के शीर्ष कवि-लेखकों तक को दिशा और प्रेरणा मिली है। वह साहित्य की बहुमुखी विधा के विरले सृजनधर्मी हैं। वह अपनी रचनाओं में हिमनदों और वनों के विनाश के विरुद्ध शब्द-स्वर मुखर करते हैं। प्रकृति से एकात्म होते हुए वह एक-एक तरु के आचरण को साफ-साफ पढ़ लेते हैं।

उनकी शिक्षा गढ़वाल, हृषिकेश, इलाहाबाद, यमुनानगर एवं पंजाब विश्वविद्यालय में हुई है। वह साठ के दशक के प्रारंभिक दिनों में 'समर स्कूल ऑफ लिंगुइस्टिक्स' उस्मानिया विश्वविद्यालय (हैदराबाद) में प्रोफेसर रहे। वर्ष 1965 में डॉक्टर ऑफ फि लॉसॉफी की डिग्री से सम्मानित हुए। उसी वर्ष कमलेश अनामिका उनकी जीवन संगिनी बनीं। वह तीन वर्षों तक पंजाब विश्वविद्यालय में रिसर्च फेलो रहे। वही हिंदी भाषा और साहित्य का अध्यापन, साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज के शोध निर्देशक एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली में केंद्रीय हिंदी निदेशालय (शिक्षा विभाग) के निर्देशक रहे। वह वर्ष 1999 से 2004 तक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केंद्र विभागाध्यक्ष रहे। इस दौरान प्रो. विमल समय-समय पर दुनिया के कई एक देशों में अपने रिसर्च पेपर भी प्रस्तुत करते रहे हैं। उनके सात कविता संग्रह, चार उपन्यास, ग्यारह कहानी संग्रह, अंग्रेजी में अनुवाद की पाँच पुस्तकें, गद्य में हिंदी अनुवाद की तीन पुस्तकें, आठ के करीब संपादित पुस्तकें, अन्य भाषाओं से अनूदित पंद्रह पुस्तकें हैं। साहित्य और संस्कृति पर किए कार्यों के लिए उन्हें दुनिया भर से अनेक पुरस्कार एवं सम्मान मिले हैं। वह पोयट्री पीपुल पुरस्कार, यावरोव सम्मान, आर्ट यूनिवर्सिटी, रोम के डिप्लोमा सम्मान, अन्तरराष्ट्रीय स्काटिश पोयट्री पुरस्कार, कल्पान्त पुरस्कार, भारतीय भाषा पुरस्कार, कुमार आशन पुरस्कार, संगीत अकादमी सम्मान, डॉ. अम्बेडकर विशिष्ट सेवा सम्मान, साहित्यकार सम्मान, हिंदी उर्दू सम्मान, महाराष्ट्र भारती सम्मान, बिहार सरकार से दिनकर पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद से भारतीय भाषा पुरस्कार आदि से समादृत हो चुके हैं। इस समय वह यद्यपि दिल्ली में रहते हैं लेकिन गृह-जनपद से नाता बना हुआ है।

(संपर्क : 9312505250/11-26289150)

लिए अनिवार्य सी वृत्ति का निर्माण करते हैं ताकि वो भाषा जब तक बोली जाए, तब तक रचना का सत्य बना रहे लेकिन यह बहुत कठिन है, अत्यंत श्रमसाध्य है। छंदोबद्ध कविता के लिए निराला जैसा साधक होना जरूरी है।

प्रश्न : क्या आलोचना संकट में है या हिंदी कविता आजकल आलोचना के संकट के दौर से गुजर रही है, किस तरह? आलोचना का कॉमनसेंस क्या होना चाहिए? समकालीन हिंदी आलोचना पर अक्सर पाठ-कुपाठ होते रहते हैं? क्या आलोचना की भी कोई राजनीति होती है?

गंगा प्रसाद विमल : आलोचना का एक गहन दायित्व है। उसको इतिहास से, और अपने समय से, जो भाषिक प्रयोग हुए हैं, उनमें क्या प्रगित हुई है, इसका लेखा-जोखा प्रस्तुत करना होता है, तुलनात्मक रूप से ये बताना होता है कि पहले की अपेक्षा अब मोटे तौर पर कितनी और कैसी प्रगति दिखाई देती है। लेकिन हमने इसका उलट प्रयोग कर दिया है। वो ये है कि किसी कृति की स्तुति कर देना ही आलोचना मान ली जाती है। और उससे बहुत लोग प्रसन्न रहते हैं कि उनकी स्तुति हो रही है। जबकि आलोचना-कर्म बहुत दुष्कर, दुरूह कर्म है। उससे समाज न केवल भाषा के गहरे पड़ावों के बारे में जानकारी पाता है, बल्कि उससे मनुष्य के विकास की संभावनाओं के संकेत भी पाता है। इसलिए यह काम आसान नहीं है लेकिन हमारे यहां वह, खास तौर से हिंदी में आसान हो गया है। वह जितना ज्यादा आसान होता गया, उतना ज्यादा व्यर्थ्य होता गया है। इसीलिए आज आलोचना के पाठ-कुपाठ पर लोग अब ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। स्थिति बहुत अच्छी नहीं है।

कुछ लोग, जो आलोचना-कर्म से गंभीरता से जुड़े हैं, वह जब किसी कृति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हैं, पढ़कर, सुनकर लगता है कि वह आलोच्य कृति के अलावा भी बहुत सारी दूसरी चीजों का भी गंभीर ज्ञान रखते हैं। ऐसे लोगों को मैं एक तरह से जिम्मेदार आलोचक समझता हूं। ऐसे लोग एक हल्के से काव्य संकेत से रचना के पूरे परिदृश्य से परिचित करा देते हैं। वह पूरे परिदृश्य से ज्यादा नहीं, कुछ-एक शब्दों का परियोजन करते हैं। ऐसा करने के लिए एक गहरी समझ, एक विशाल अध्ययन, गहन साहित्यिक साधना की जरूरत होती है। ऐसे आलोचक अपनी स्मृति का बहुत बड़ा हिस्सा प्रयोग करते हैं। मैं अक्सर अपने एक मित्र मैनेजर पांडेय के बारे में ये कहता हूं कि वह अक्सर गुस्से में भी रहते हैं, आवेश में आ जाते हैं, उल्टे-पुल्टे को सीधा कर देते हैं और सीधे को उल्टा-पुल्टा। लेकिन एक पद के एक छोटे हिस्से से वह रचना-समय के पूरे सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से, सृजन के पूरे परिवेश परिचित करा देते हैं। ये सामर्थ्य आलोचना में निश्चित रूप से महत्वपूर्ण होती है। दुर्भाग्य से हमारे यहां जो आधुनिक समीक्षा-पद्धतियां हैं, उनके कारण भी सार्थक आलोचना संभव नहीं हो पा रही है। जहां तक आलोचना में भी राजनीति का सवाल है, तो वह निश्चित रूप से है। जन जीवन ही राजनीति से विलग नहीं है। हर जगह राजनीति है। हम उससे बच नहीं सकते लेकिन उससे रास्ता निकाला जाना चाहिए।

प्रश्न : आपके कवि के बारे में तो सभी जानते हैं, आपके व्यक्ति, गृहजनपद, उसकी प्रकृति-संस्कृति, आपके बचपन आदि के बारे में जानना चाहेंगे। आपके साहित्य-कर्म में क्या जीवन संगिनी की भी किसी तरह की सहभागिता रही है?

गंगा प्रसाद विमल : मैं उत्तरकाशी (उत्तराखंड) में पैदा हुआ। आज भी गांव से, अपनी जड़ों से रिश्ता बना हुआ है। दिल्ली से जब भी जाने का मन होता है, वॉकर के सहारे परिजन वहां ले जाते रहते हैं। बच्चे बड़े हो गए। बेटा विदेश में, बेटी नगर में रहती है। मेरी पत्नी ज्यादा समझदार, ज्यादा पढ़ी लिखी, ज्यादा प्रवीण, कई भाषाओं के बारे में गहरी समझ रखती हैं। उनके साथ जीवन भर मैं तो राजनीतिक कार्यकर्ता की तरह रहा। वह मेरी आदतों से वाकिफ रहीं। मैं अपने जीवन में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में रहा, जिसके लिए किसी जमाने में मित्रों की संगति-कुसंगति प्रायः प्राथमिक रहा करती थी। उससे काफी वक्त तक मेरा एक तरह से सोचना-विचारना अवरुद्ध सा रहा लेकिन पत्नी ने उसे बड़ी डिप्लोमेसी से सहज किया, जिससे लिखना संभव हो सका। मैं दुनिया भर में जाता-आता रहा। वह समझदार औरत हैं। उन्होंने बहुत कठिनाई के साथ जीवन बिताया है, इसलिए मेरा जीवन उनके सहेज लिए जाने से अन्य कवि-लेखकों की बनिस्बत मैं ज्यादा ठीक रहा हूं। मेरा छोटा सा परिवार है लेकिन छोटे परिवार की समस्याएं भी छोटी कहां होती हैं।

प्रश्न : हाल के दिनो में आपने कौन सी साहित्यिक कृतियां पढ़ी हैं? अपना व्यस्त समय पढ़ने पर देने की दृष्टि से उनमें सबसे महत्वपूर्ण कृति कौन सी लगी? कौन सी कृतियां जहन में हैं, जिन्हें पढ़ नहीं सके हैं, पढ़ने का बहुत मन कर रहा है, क्यों?

गंगा प्रसाद विमल : पिछले दिनो मैं काफी अस्वस्थ रहा था। पढ़ने-लिखने से रोक दिया गया था। आंख का ऑपरेशन भी हुआ। कुछ स्वस्थ हुआ तो हाल के दिनो में विदेशी भाषाओं का साहित्य पढ़ता रहा, दूसरे देशों के साहित्य का दुष्कर पाठ। यह पढ़ता रहा कि जो चेंजिंग वर्ल्ड है, जो दुनिया बदल रही है, इस बदलाव के कारक क्या-क्या हैं? ऐसी पुस्तकें बड़ी कठिनाई से मिलती हैं। पुस्तकालयों के लोगों की खुशामद से प्राप्त होती हैं। मैंने पाया कि एक लेखक हैं, नैन्सी फ्रेजर, उनको पढ़ना बड़ा मजेदार रहा। उनकी लिखी सामग्री बहुत उपलब्ध भी नहीं है। वह लिखते हैं कि हमारी दुनिया में क्या चीजें नई हो रही हैं। उन्होंने एक समाज विज्ञानी के रूप में रेखांकित किया है कि आज संसार में कौन सी बारीक शक्तियां हैं, जो बड़ी मेहनत से अपना काम कर रही हैं और उनके क्या-क्या स्वरूप हैं। एक आर्किटेक्ट की किताब पढ़ी, जिसमें यह उल्लेख है कि पारंपरिक दुनिया से भिन्न क्या हो रहा है। वैसे मेरे घर में बहुत सारी किताबें रखी हुई हैं। स्वास्थ्यगत कारणों से सबको पढ़ना चाहकर भी नहीं पढ़ पा रहा हूं। मेरे एक मित्र हैं। उन्होंने मुझे तीन किताबें दी हैं। उन किताबों को आंख का ऑपरेशन हो जाने से अभी तक पढ़ नहीं पाया हूं। अब पढ़ूंगा। मामूली रूप से इतना भर जान सका हूं कि वे किताबें भारतीय दर्शन की अत्याधुनिक प्रवृत्ति को आधार बनाकर लिखी गई हैं।

गंगा प्रसाद विमल की तीन कविताएं

मृतोपवन्य:

हम पहाड़ी लोग..
भांग में घोटकर पी जाते
हिमालय की मिश्री चट्टानें
शराब में घोल डालते
कोई और जहरीली बूटी
गीता में लिखे
उस महानतम पर्वत के पुत्र हम
कहीं से नहीं आए
नहीं गए कहीं
पैदा हुए यहीं
और किसी दिन खबर फैली कोई
आदमखोर खा गया
हममें से एक लाश
हमने अपने गाँव की ढाल पर
चितकबरे..रंगीन से दिखने वाले लट्ठे जोड़े
सजाई चिता
फूँक डाला आँसुओं को..
पूर्वजों ने कहा था -
जब कोई बालक अनाथ होगा
तो ठीक सामने
सूर्य की पहली रोशनी से
जगमग सा दिखने वाला हमारा पूर्वज
स्वयं पालेगा उसे..
कोई अनाथ नहीं होगा यहाँ कभी...
यही मान जान हमने
मंत्र की शक्ल में की नकल
भोटिया कुत्तों की आवाजें
....कहते हैं
हमारी कूँ कूँ की तीर्यक ध्वनि पर
लहालोट होती रहीं सरकारें..
हम चले पंजों के बल
खुरच डाला पृथ्वी का उरोज
कि
किसी दुर्वासा ने शाप दिया...
अप्रतिहत सभ्यताओं से ऊपर
बहुत ऊपर
धरती के मस्तक पर
हम बो रहे हैं पहाड़
कि किसी दिन वे उगेंगे
और पाल्य बनेंगे..
बकरी की तरह
मिमियाते हम पहाड़ी लोग
बतियाते रहते हैं
कि एक दिन जब आखिरकार
दुनिया के सभी सभ्य मिलकर
ठांस देंगे पृथ्वी के गर्भ में
दुनिया के सारे पत्थर और पहाड़
बाँझ हुई धरती तब
कितनी चुप्प होकर सिसकेगी..
हम पहाड़ी लोग
अनाथ हो जाएँगे उस दिन।

रूपांतर

रूपांतर
इतिहास
गाथाएं
झूठ हैं सब
सच है एक पेड
जब तक वह फल देता है तब तक
सच है
जब यह दे नहीं सकता
न पत्ते
न छाया
तब खाल सिकुड़ने लगती है उसकी
और फिर एक दिन खत्म हो जाता है वह
इतिहास बन जाता है
और गाथा
और सच से झूठ में
बदल जाता है
चुपचाप।

शेष

शेष
कई बार लगता है
मैं ही रह गया हूँ अबीता पृष्ठ
बाकी पृष्ठों पर
जम गई है धूल।

धूल के बिखरे कणों में
रह गए हैं नाम
कई बार लगता है
एक मैं ही रह गया हूँ
अपरिचित नाम।

इतने परिचय हैं
और इतने सम्बंध
इतनी आंखें हैं
और इतना फैलाव
पर बार-बार लगता है
मैं ही रह गया हुं
सिकुडा हुआ दिन।

बेहिसाब चेहरे हैं
बेहिसाब धंधे
और उतने ही देखने वाले दृष्टि के अंधे
जिन्होंने नहीं देखा है
देखते हुए
उस शेष को
उस एकांत शेष को
जो मुझे पहचानता है
पहचानते हुए छोड देता है
समय के अंतरालों में...
कौन कहाँ रहता है
कौन कहां रहता है
घर मुझमें रहता है या मैं
घर में
कौन कहां रहता है
घर में घुसता हूँ तो
सिकुड जाता है घर
एक कुर्सी
या पलंग के एक कोने में
घर मेरी दृष्टि में
स्मृति में तब कहीं नहीं रहता
वह रहता है मुझमें
मेरे अहंकार में
फूलता जाता है घर
जब मैं रहता हूँ बाहर
वह मेरी कल्पना से निकल
खुले में खडा हो जाता है
विराट-सा
फूलों के उपवन-सा उदार
मेरे मोह को
संवेदन में बदलता
और संवदेन को त्रास में
घर मुझमें रहता है अक्सर
मैं भी रहता हूँ उसमें
वह बांधे रहता है मुझे
अपने पाश में...!

उत्तर प्रदेश के रन्हेरा (बुलंदशहर) में जन्मे किंतु इस समय देहरादून (उत्तराखंड) में रह रहे अश्वघोष उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, उ.प्र. प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय, संभावना संस्थान, 'समन्वय' आदि से समादृत हैं। 'अम्मा का खत' कविता पाठ्यक्रम में संकलित। उनकी प्रमुख कृतियां हैं - हिंदी कहानीः सामाजिक आधारभूमि। ज्योतिचक्र, पहला कौतेय (खंड काव्य)। तूफान में जलपान, आस्था और उपस्थिति, अम्मा का खत, हवाः एक आवारा लड़की, माँ, दहशत और घोड़े, . जेवों में डर, सपाट धरती की फसलें, गई सदी के स्पर्श आदि (कविता संग्रह)। डुमक-डुमक-डुम, तीन तिलंगे, राजा हाथी, बाइस्कोप निराला (बाल काव्य-संकलन)

वक्त ने मुझे चित्रकारी और अभिनय से वंचित किया : अश्वघोष

कवियों से रकम ऐंठ कर मुफ्त में नाम कमाने वालों का मैं विरोधी

अपने गृह-जनपद बुलंदशहर (उ.प्र.) से पड़ोसी राज्य उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में आ बसे हिंदी के प्रतिष्ठित कवि अश्वघोष 'कविकुंभ' से 'शब्द-संवाद' में कहते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर साहित्य भोगे हुए यथार्थ का साहित्य है। यह आम आदमी का साहित्य है। यह 'कला, कला के लिए' न होकर, 'कला समाज के लिए' सिद्धांत पर आधारित है। जहां तक स्मृति में है, मेरी पहली कविता 1967 में 'मधुमती' अथवा 'हिमप्रस्थ' में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद से निरंतर रचना-यात्रा जारी है। जहां तक आजकल के कविता-मंचों का प्रश्न है, ने दो दृष्टियों से आयोजित किए जा रहे हैं- हिंदी कविता के संवर्धन-समृद्धि के लिए और व्यक्तिगत यश-प्रतिष्ठा के लिए। मैं कविता के संवर्धन एवं समृद्धि का पक्षधर हूं। दूसरे वाले कवियों से अच्छी रकम ऐंठकर मुफ्त में नाम कमा रहे हैं। मैं उनका विरोध करता हूं।

प्रश्न : कविता आपकी जिंदगी में कैसे-कैसे आई?

अश्वघोष : आरंभ में मेरा रुझान चित्रकारी अथवा अभिनय में था परंतु घरेलू एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण अंगीकार नहीं कर सका। मन में उद्वेलित विचारों को तो किसी न किसी माध्यम से बाहर आना ही था। बस कविता से जुड़ गया। हां, इस काव्य-लेखन में मेरे अध्यापक राधेश्याम 'प्रगल्भ' के अतिरिक्त शिशुपाल सिंह 'निर्धन', सव्यसाची, से.रा.यात्री, रमेश कौशिक और सुरेश कौशिक से मुझे निरंतर कविता लिखने की प्रेरणा मिलती रही। ये सभी साहित्यकार मेरे गृहनगर खुर्जा के रहे हैं। मेरा घर का नाम ओमप्रकाश शर्मा रहा है। उस वक्त ओमप्रकाश 'पथिक' के नाम से लिखा करता था। बाद के दिनों में मुझे 'अश्वघोष' नाम सव्यसाची ने दिया।

जब मेरी कविताएं पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं, उसके उपरांत तो डॉ. कुंवरपाल सिंह, नागार्जुन, विष्णुप्रभाकर, भवानी प्रसाद मिश्र, रमेश रंजक, श्रीलाल शुक्ल, नईम, बालस्वरूप राही, रामदरश मिश्र आदि कवि-साहित्यकारों से मुझे निरंतर लिखते रहने की प्रेरणा मिली। वे मेरी कविताओं को सराहते रहे। मैंने लगभग 1960 में कविताएं लिखनी शुरू कीं। उस वक्त के ज्यादातर कवि हर विधा गीत, गजल आदि में लिखते थे। चूंकि मुझ पर निराला, शमशेर, त्रिलोचन, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि का प्रभाव था, मैंने भी कविता के तीनो रूपों में अपने भावों एवं विचारों को प्रकट करने की चेष्टा की। मैंने यह पहली, सार्थक कविता 1961 में लिखी -

समय स्थिर हो गया है,
कमबख्त मेरे दरवाजे पर सो गया है,
मैंने तो इसके गले की घंटियां बहुत बनाईं
लेकिन इसकी नींद नहीं खुली,
और मुझे नए युग की नई रोशनी नहीं मिली
मैं तो आज भी
अपनी मरी हुई जिंदगी को
किसी बंदरिया के प्राणहीन बच्चे की भांति
अपने पेट से इसलिए चिपकाए रहता हूं
कि शायद कभी समय की नींद खुलवाए
और मुझे नए युग की नई रोशनी मिल जाए।

जहां तक स्मृति में है, मेरी सबसे पहली कविता 1967 में 'मधुमती' अथवा 'हिमप्रस्थ' में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद से तो आज तक देश की ज्यादातर प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर मेरी कविताएं प्रकाशित होती रहती हैं।

प्रश्न : पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन एवं दूरदर्शन-आकाशवाणी से प्रसारण क्या आप आत्मप्रचार के लिए करते हैं?

अश्वघोष : देखिए, अपनी रचनाओं के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन एवं दूरदर्शन-आकाशवाणी से प्रसारण से मुझे एक प्रकार का संतोष प्राप्त होता है कि मैं जिस आम आदमी के लिए व्यथा-कथा लिख रहा हूं, वह किसी न किसी माध्यम से उस तक पहुंच रही है। इसे आप चाहे मेरा आत्मप्रचार समझ लें या फिर कोई स्वार्थ, यह आप पर निर्भर करता है। अब तक कविता, गीत, गजल के मेरे चौदह संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रश्न : स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में आप किस तरह का प्रवृत्तिगत अंतर पाते हैं?

अश्वघोष : स्वतंत्रता से पूर्व निराला को छोड़कर ज्यादातर रचनाकार अपने सृजन में व्यक्तिगत व्यथा-कथा को कथ्य का आधार बनाते थे। आजादी मिलने के बाद रचनाकारों ने सामाजिक प्रतिबद्धताओं के साथ लिखना शुरू किया। उन रचनाओं में हमे भूख, गरीबी, बेकारी, अकेलापन, बदलते हुए मूल्य एवं टूटते हुए रिश्तों का बारीक, बेबाक चित्रण मिलता है। एक वाक्य में अपनी बात समाप्त करूं तो स्वातंत्र्योत्तर साहित्य भोगे हुए यथार्थ का साहित्य है। यह आम आदमी का साहित्य है। यह 'कला, कला के लिए' न होकर, 'कला समाज के लिए' सिद्धांत पर आधारित है।

प्रश्न : आजकल के कविता समारोहों को आप किस दृष्टि से देखते हैं? क्या ये हिंदी साहित्य के संवर्धन एवं समृद्धि में सहायक हैं?

अश्वघोष : आजकल के कविता समारोह दोनो ही दृष्टियों से आयोजित किए जा रहे हैं। अब भी समाज में कुछ ऐसे काव्य-प्रेमी हैं, जो हिंदी

कविता के संवर्धन एवं समृद्धि के लिए प्रतिबद्ध हैं। वे सचमुच निःस्वार्थ भाव से अपना तन-मन और धन लगाकर ऐसे समारोहों का आयोजन करते रहते हैं। ऐसे लोग भी हैं, जो सिर्फ व्यक्तिगत यश-प्रतिष्ठा के लिए ही ऐसे आयोजन किया करते हैं लेकिन उनकी ऐसी युक्तियां अधिक दिनो तक काम की नहीं रह जाती हैं। अंततः ऐसे महानुभावों को लोग पहचान ही लेते हैं। मैं कविता के संवर्धन एवं समृद्धि का पक्षधर रहा हूं। तो उन लोगों का समर्थन करता हूं, जो इस ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करने में अपनी ऊर्जा एवं धन का प्रयोग सहर्ष, निःस्वार्थभाव से करते हैं।

प्रश्न : हर साल बड़ी संख्या में साझा काव्य-संग्रह विभिन्न विधाओं में छपकर आ रहे हैं। उनके आए दिन विमोचन होते रहते हैं। साहित्य के संवर्धन की दृष्टि से इसे क्या माना जाए?

अश्वघोष : साझा काव्य-संग्रहों के प्रकाशन की बात केवल आजकल की नहीं है। ऐसा आजादी के पहले से होता आ रहा है। कविता, गीत और गजल को लेकर पहले से ही संवेत संकलन प्रकाशित होते रहे हैं। उनमें ही अज्ञेय द्वारा संपादित तार सप्तक हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनके प्रकाशन में भी मैं इन्के संवेत संकलनों का पक्षधर रहा हूं, जो सचमुच नई प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से प्रकाशित हो रहे हैं। इसके विपरीत कुछ प्रकाशक अथवा व्यक्ति मात्र व्यावसायिक उद्देश्य से भी ऐसे संकलन प्रकाशित कर रहे हैं। वे कवियों से अच्छी रकम ऐंठकर मुफ्त में नाम कमा रहे हैं। मैं उनका विरोध करता हूं।

प्रश्न : वर्तमान में आप अपने पसंदीदा कवियों में किसका नाम लेना चाहेंगे?

अश्वघोष : आपका यह प्रश्न मुझे अजीब सी ऊहापोह की स्थिति में ले जा रहा है। इधर, कविता, गीत और गजल के क्षेत्र में मेरे अनेक कविमित्र सक्रिय हैं। मैं उन्हें खूब पढ़ता हूं और सराहता भी हूं, और अच्छा लिखने के लिए प्रेरित भी करता हूं। जहां तक 'पूर्ण कविता' का प्रश्न है, कविता में लीलाधर जगूड़ी, गीत में यश मालवीय और गजल में विज्ञान व्रत की रचनाओं में मुझे आनंद प्राप्त होता है। इन तीनो कवियों की रचनाएं मुझे संतुष्ट तो करती ही हैं, साथ ही अच्छा लिखने की प्रेरणा भी देती हैं।

अश्वघोष की रचनाओं के पांच रंग

एक

झूठ की हैं कोठियां ही कोठियां।
एक कमरा तक नहीं सच का यहां।

और कितने दिन रुलाएंगी बता
आदमी की जात को ये रोटियां।

कौन कितना आसमां देखेगा अब
फैसला इसका करेंगी खिड़कियां।

बंदरों ने बांट ली दौलत सभी,
देखती ही रह गई हैं बिल्लियां।

कुल मिलाकर ये मिला इस दौर में
भय, थकन, कुंठा, निराशा, सिसकियां।

दो

हवा एक आवारा लड़की,
बांस बजाते सीटियां।

सारा जंगल बना मोहल्ला
मचा रहे पशु-पक्षी हल्ला

चेहरा पीला, छाती धड़की
बांस बजाते सीटियां।

नीड़-नीड़ में उसके चरचे
पत्रों ने छापे हैं परचे
पेड़ों में ज्वाला सी भड़की
बांस बजाते सीटियां।

भाग रही है मरी अकेली
साथ न कोई सगी, सहेली
सहसा नभ में बिजली कड़की
बांस बजाते सीटियां।

तीन

इस दफा ऐसा हुआ आसाढ़ में।
सपने सलोने बह गए सब बाढ़ में।

खेत नंगे हो गए, खलिहान हैं खाली
भूख देती फिर रही भगवान को गाली
एक दाना भी नहीं है भूजने को भाड़ में।

ढोर-डंगर छटपटाते जिंदगी के वास्ते
मजबूरियों ने ढक दिए संवेदना के रास्ते
लाचारियां सी उग रही हैं आदमी के लाड़ में।

हर तरफ गहरा रही है मौत की छाया
बीमारियों से डर गया सावन नहीं आया
रो रहे हैं कई सुग्गे, चुपके-चुपके झाड़ में।

चार

आंगन की गोद में खेल रही हैं लड़कियां
देख रही है रसोई
देख रहा है छप्पर
मंदिर की घंटियों की तरह
बज रही है लड़कियों की हंसी।

खेल रही हैं लड़कियां
जैसे पेड़ों की फुनगियों पर खेल रही हों
सूरज की किरणें,
क्यारी में खेल रहे हों फूल,
जैसे जेब में खेल रही हों अठन्नी-चवन्नियां।
जैसे अनाज की रास में चोंच मारकर बार-बार
भाग रहा हो चिड़ियों का झुंड
जैसे संध्या को अलविदा कहतीं
पेड़ों की हिलती हुई उंगलियां
जैसे बरखा के जल में खेल रहे हों बुलबुले

आंगन की गोद में खेल रही हैं लड़कियां
आने वाले दुखों से बेखबर
जैसे कैलेंडर में खेल रही हैं तारीखें।

पांच

स्कूल जा रहे हैं बच्चे
बच्चों के साथ जा रहा है घर
जब लौटेंगे बच्चे
लौटेगा घर
तब तक घर रहेगा बेघर
अजीब है न, घर का बेघर रहना

न भोर, न शोर
चारो ओर सन्नाटा
अजीब है न, घर का बेघर रहना

न धरती, न आकाश
सिर्फ शून्य में विचरता मन
गमगीन, कर्महीन
अजीब है न, घर का बेघर रहना

न प्यार, न रफ्तार
बस खड़े-खड़े किसी अदृश्य से
घर के सही-सलामत
लौट आने की अनवरत गुहार।

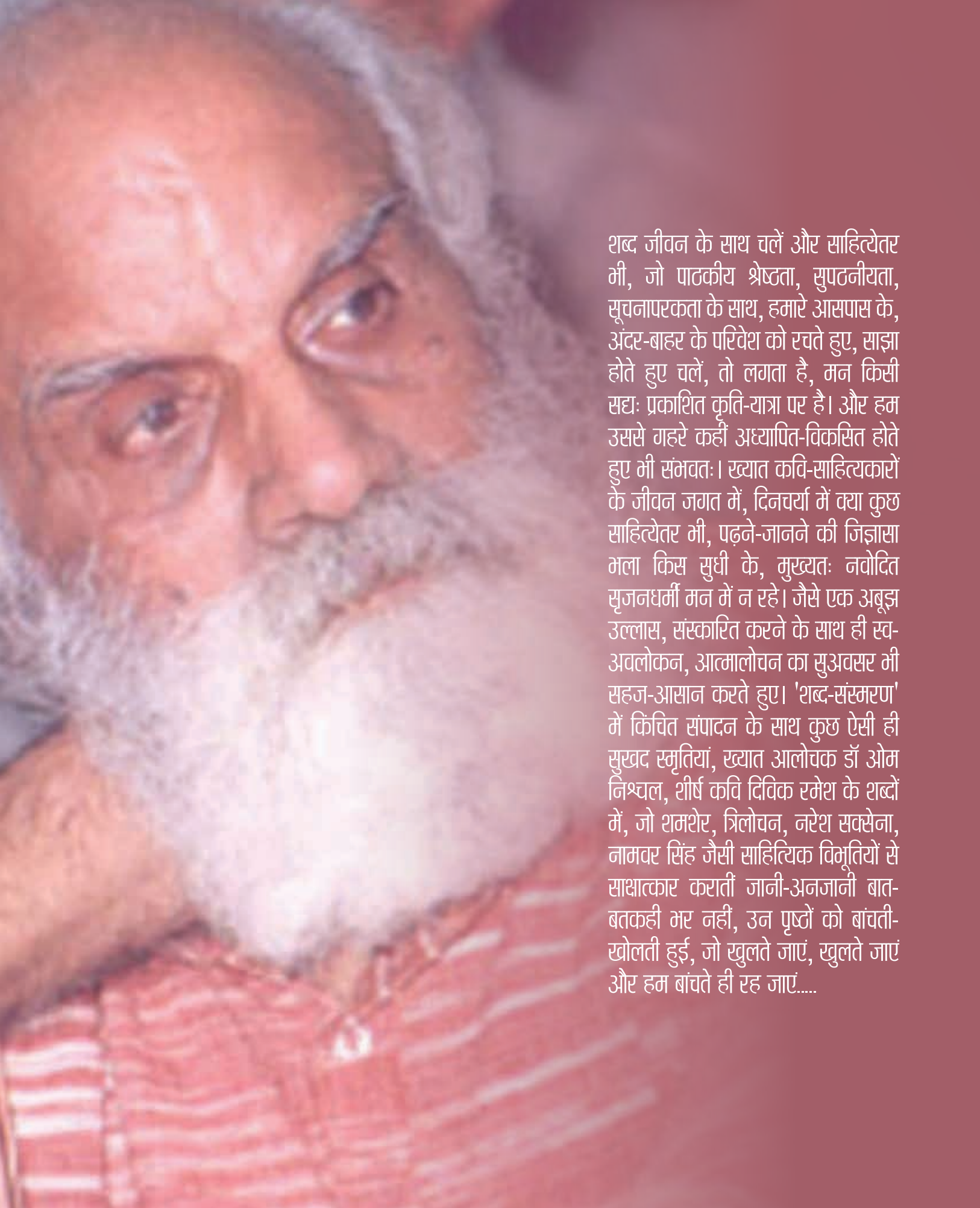

शब्द जीवन के साथ चलें और साहित्येतर भी, जो पाठकीय श्रेष्ठता, सुपठनीयता, सूचनापरकता के साथ, हमारे आसपास के, अंदर-बाहर के परिवेश को रचते हुए, साझा होते हुए चलें, तो लगता है, मन किसी सद्यः प्रकाशित कृति-यात्रा पर है। और हम उससे गहरे कहीं अध्यापित-विकसित होते हुए भी संभवतः। ख्यात कवि-साहित्यकारों के जीवन जगत में, दिनचर्या में क्या कुछ साहित्येतर भी, पढ़ने-जानने की जिज्ञासा भला किस सुधी के, मुख्यतः नवोदित सृजनधर्मी मन में न रहे। जैसे एक अबूझ उल्लास, संस्कारित करने के साथ ही स्व-अवलोकन, आत्मालोचन का सुअवसर भी सहज-आसान करते हुए। 'शब्द-संस्मरण' में किंचित संपादन के साथ कुछ ऐसी ही सुखद स्मृतियां, ख्यात आलोचक डॉ ओम निश्चल, शीर्ष कवि दिविक रमेश के शब्दों में, जो शमशेर, त्रिलोचन, नरेश सक्सेना, नामवर सिंह जैसी साहित्यिक विभूतियों से साक्षात्कार करातीं जानी-अनजानी बात-बतकही भर नहीं, उन पृष्ठों को बांचती-खोलती हुई, जो खुलते जाएं, खुलते जाएं और हम बांचते ही रह जाएं.....

९ दिसंबर, पुण्यतिथि पर विशेष

शमशेर के घर उस दिन बस त्रिलोचन बोलते रहे, बाकी सब सुनते रहे

डॉ दिविक रमेश

कवि त्रिलोचन का वास्तविक नाम वासुदेव सिंह है। प्रारम्भ में उनकी पुस्तकें त्रिलोचन शास्त्री के नाम से छपीं। इस नाम के दो हिस्से- 'त्रिलोचन' साहित्य-नाम और 'शास्त्री' उपाधि। बाद में प्रकाशित उनकी पुस्तकों में 'त्रिलोचन' नाम ही दिया गया। साहित्य-नाम 'त्रिलोचन' उन्हें बचपन में ही मिल गया था। छह-सात साल की उम्र में ही बालक वासुदेव सिंह ने अपनी स्मरण-शक्ति और प्रतिभा से गुरु देवदत्त को चकित कर दिया था। तभी उन्होंने गुप्त रूप से उन्हें 'त्रिलोचन' नाम दे दिया था। त्रिलोचन की पहली कविता -

प्रभु उन्हें दण्ड दो
जो लोग चलते नहीं
कहते हैं चलते हैं
वे तुम्हारी शक्ति का अपमान करते हैं
प्रभु उन्हें दण्ड दो।

त्रिलोचन अपना काव्य-गुरु तुलसीदास को मानते थे और मेरे काव्यगुरु त्रिलोचन। उन्होंने बहुत दिनों तक साहित्य के तथाकथित बड़े नियामकों की उपेक्षा को बेफिक्री से जिया लेकिन अंततः अपनी रचनाओं को उन्ही के बल पर मान्यता दिलाने पर विवश भी किया। उनकी कुछ पंक्तियां जो उनके रचना-संघर्ष को दिखाती हैं-

प्रगतिशील कवियों की नई लिस्ट निकली है
उसमें कहीं त्रिलोचन का तो नाम नहीं था
आंखें फाड़ कर देखा, दोष नहीं था
पर आंखों का सब कहते हैं कि प्रेस छली है
शुद्धिपत्र देखा, उसमें नामों की माला
छोटी न थी। यहां भी देखा कहीं त्रिलोचन नहीं।

त्रिलोचन से मैंने 'आघात पर आघात' सहने का गुर सीखा।' चम्पा काले अच्छर नहीं चीन्हती' को मैं हिन्दी और भारत की ही नहीं, विश्व की एक बेहतरीन कविता मानता हूं। उनके जीवन के लगभग अंतिम दोनों में उनसे भेंट की थी। एक संस्मरण भी लिखा। मुझे नहीं याद आ रहा है कि त्रिलोचन का साथ कभी छूटा हो। कहीं भी गया हूँ, कहीं भी रहा हूँ, त्रिलोचन का मनोरूप हमेशा साथ रहा है, साथ ही नहीं, वह ताकत भी देता रहा है। 'आघात पर आघात', 'प्रगतिशीलों की सूची में नाम नहीं है', जैसी पंक्तियों ने कितनी ताकत दी है, यह मैं ही जानता हूँ। 15 मार्च 1982 को जेएनयू स्थित निवास पर एक मुलाकात में कवि केदारनाथ सिंह ने कहा था कि उनकी निगाह में नागार्जुन अपनी और दूसरों की कविताओं में अच्छे-बुरे का विवेक रखने में सबसे आगे हैं। उनके बाद त्रिलोचन हैं। त्रिलोचन ने अधिक से अधिक जानकारी देने में विश्वास रखा। निन्दा-सुख उन्होंने जाना ही नहीं। इसीलिए किसी रचनाकार को लेकर एक हद के बाद किसी बहस में कम ही पड़े।

हाँ, तिलोचन ही शमशेर को 'उल्लू' कह सकते हैं, कितने प्यार से। लेकिन शमशेर की कितनी तारीफ भी तो करते। ऐसा कब संभव हो पाता है? दो टूक आलोचना और प्यार। क्यों नहीं है इस पीढ़ी में ऐसा, हमारी पीढ़ी में। शमशेर जी से दो-तीन वर्ष बड़े होकर भी वह दिल से कितने जवान थे। शमशेर के विचार में कविता में ऐसी गुत्थी नहीं होनी चाहिए, जिससे वह समझ में ही न आ सके। उन्होंने त्रिलोचन की धर्मयुग में छपी गजल को ऐसा ही माना। वैसा न लिखने को भी कहा। उन्होंने सलाह दी कि त्रिलोचन जी को सॉनट या गजल का संग्रह अभी न छपावाकर फ्री वर्स या गीतों का संग्रह छपवाना चाहिए। एक बार मैंने त्रिलोचन जी के दांत पर कविता लिखी। सुनकर वे चिरपरिचित अंदाज में हँस पड़े थे। कविता इस प्रकार है -

खबर है कि नहीं रहा एक अगला दांत कवि त्रिलोचन का
न हुआ पर न हुआ अफसोस मीर का नसीब
सामने साक्षात थे वासुदेव, कि न चल सका जोर, यूं मारा बहुत था।
भाई, बाकी तो सब सलामत हैं, बेकार था, सो गया, अफसोस क्या?
सुनो, शोभा के लिए अधिक होते हैं ये अगले दांत।
और भाई
त्रिलोचन और शोभा! ऊँ! वहां दिल्ली का क्या हाल है?
सर्दियों में खासी कटखनी होती है सर्दी।
कहूं, यूं तो वार दूं दुनिया की तमाम शोभा आप पर

तो भी लगवा लें तो हर्ज ही क्या है, त्रिलोचन जी!
नकली? जो मिलता है, ऊँ, यानी वेतन
या तो दांत ही लगवालूं या फिर भोजन जुटा लूं,
महीनेभर का।
वेतन!
पर आप तो पाते हैं प्रोफेसर का!
ऐसा,
तो मैं चुप हूं भाई
त्रिलोचन भीख तो नहीं मांगेगा।
चुप ही रहा।
गनीमत थी, नहीं मिली थी उपाधि उजबक की।
क्या सच में शोभा के लिए होता है अगला दांत, महज
और इसीलिए बेकार भी
कहा, काटने के भी तो काम आता है त्रिलोचन जी!
रहता तो काटने में सुविधा तो रही होती न?
ठीक कहा, त्रिलोचन हंसे-मुस्कराने की शैली में -
तुम उजबक हो
काटने को चाकू होता है।
अजीब उजबक था मैं भी
त्रिलोचन और काटना!
आता काटना तो क्या कटे होते चिरानीपट्टी से
क्या कटे होते हर वहां से
जहां जहां से काटा जाता रहा है उन्हें!
नहीं जानता त्रिलोचन सहमत होते या नहीं इस बात पर
सो सोच कर रह गया
और सपने को सपना समझ कर भूल गया
हालांकि निष्कर्ष मेरे हाथ था -
त्रिलोचन और काटना !

टीस सहलाते हुए कबीर की तरह खोट निकाल चोट करते त्रिलोचन

त्रिलोचन नए से नए रचनाकार को पढ़ने के लिए उत्सुक रहते थे और साथ ही किसी भी पत्रिका और अखबार को भी। केवल साहित्यिक पत्रिका ही नहीं। लोग जानते होंगे वे इसके लिए प्रेरित भी करते थे। जैसे शमशेर को कवियों का कवि कहा गया है वैसे ही त्रिलोचन को उपेक्षितों का उपेक्षित सहानुभूतिपूर्ण सहयात्री कहा जा सकता है। यानी त्रिलोचन सम्पर्क में आए व्यक्ति की 'टीस' को समझने में माहिर थे। और तब जिस डूब और अपनेपन के साथ वे उस टीस को भीतर से सहलाते हुए कबीर के गुरु की तरह बाहर से खोट निकाल चोट करते थे तो किसी के लिए भी वे विश्वसनीय परिजन हो जाते थे। दिल्ली में काफी समय गुजरने के बाद भी उन्हें साहित्य अकादमी के कार्यक्रमों के लिए निमंत्रण-पत्र नहीं मिलता था। मिलता तो मुझे भी नहीं था उन दिनों। पर त्रिलोचन को न मिलना अखरता था। और उनकी सोच थी कि अगर संस्था ने निमंत्रण-पत्र द्वारा बुलाया है तो उसकी प्राप्ति के बिना वे उस संस्था के कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं होंगे - चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो। उन दिनों विष्णु खरे पर साहित्य अकादमी में कार्यक्रमों की जिम्मेदारी थी। प्रसंग थोड़ा अप्रिय है अतः छोड़ता हूँ। लबोलुआब यह कि मैंने हस्तक्षेप किया और त्रिलोचन जी को निमंत्रण-पत्र मिलने लगे। बाद में तो साहित्य अकादमी को विवश होकर उन्हें 'ताप के ताए हुए दिन' पर पुरस्कार भी देना पड़ा। हालाँकि त्रिलोचन का मानना था कि उनका संग्रह 'शब्द' कहीं बेहतर और पुरस्कार के योग्य था। मुझे याद करके भी अच्छा लग रहा है कि साहित्य अकादमी पुरस्कार की सूचना 'अम्मा' (त्रिलोचन जी की पत्नी) को सबसे पहले मैंने ही दी थी। बाद में एक कविता भी लिखी थी - 'सीलन भरे हिस्से की धूप' जो 'खुली आँखों में आकाश' में संकलित है।

त्रिलोचन! न अतीत, न भविष्य और न ही वर्तमान। महाकाल! निरन्तरता में ही कोई पकड़ ले तो पकड़ ले। सतत गतिशील! न आदि न अंत। जानकार जानते हैं कि त्रिलोचन जब भी उभरे या उभरेंगे या उभरते हैं तो एक निरन्तर वाणी, एक निरन्तर गतिशीलता में ही। जड़ता या ठहराव को अर्थहीन करते हुए, रुके रुके मुक्तिबोध से अलग, सतर्क और तैयार। त्रिलोचन ने दृश्यमान होकर कभी किसी को नहीं ललकारा। लेकिन वे अब अपनी देह-मृत्यु के बाद भी अच्छे-अच्छों के लिए चुनौती बने हुए हैं। रहेंगे भी।

त्रिलोचन अंधों के हाथी हैं जो अपने अपने हाथ में आए भाग के आधार पर त्रिलोचन को परिभाषित करते रहते हैं। वे कभी आलोचक/कों के द्वारा प्रायोजित कवि नहीं रहे। बल्कि आलोचक उस कवि की बदौलत उसे खोजने पर विवश होते-हुआते कुछ सुर्ख हो सके (अपने अपराध-बोध से बचते रहे)। कोई पैमाना नहीं जो त्रिलोचन को माप सके। कोई पात्र नहीं जिसमें त्रिलोचन समा सके। वे एक साथ अभिधा भी हैं तो लक्षणा और व्यंजना भी। अतिशयोक्ति हैं तो स्वाभाविक अलंकार भी। वे शब्द भी हैं तो मिथक भी। प्रतीक हैं तो बिम्ब भी। वे 'सूट बूट' में निरे किसान और देहाती हैं तो बिना स्त्री किए कुर्ते-पाजामे में बड़े से बड़े महानगरीय महापुरुष या अधिकारी को तलवे चटा देने वाले भी। वे मेरे भी हैं तो उसके भी हैं। यानी सबके हैं। 'सब' उनका कुटुम्ब हैं। आत्मीय कुटुम्ब। भरा पूरा। सब का दावा है कि त्रिलोचन जितना उनका है, किसी का नहीं। सब का दावा है। यानी एक एक का। कैसे थे? नहीं। कैसे हैं त्रिलोचन? अजात शत्रु तो कोई भी हो सकता है किन्तु जात मित्र मात्र अपने केवल त्रिलोचन ही थे। खुद अपने आदर्श तुलसी और निराला का भी अतिक्रमण करते हुए बड़े।

कठिनाई यही है कि त्रिलोचन का कोई छोर है ही नहीं। जब भी पकड़ना होगा बीच से ही - छोर के भ्रम में। लेकिन बीच से पकड़ कर लगता नहीं कि उन्हें प्रारम्भ से नहीं पकड़ा। दूसरी इतनी नवीनता

त्रिलोचन छोड़ किसी अन्य में हो, याद नहीं आ रहा। वास्ता तो मुक्तिबोध छोड़ शेष तीनों यानी केदार (अग्रवाल), नागार्जुन और शमशेर से भी काफी. रहा है। अपवाद स्वरूप त्रिलोचन दोहराते भी थे तो एक सर्वथा नए अन्दाज में, नए संदर्भ में। इसलिए नए अर्थ में भी। ज्योति स्वरूप कहा जा सकता है त्रिलोचन को। ज्योति को घेरे में रख कर हर दिशा में बैठा व्यक्ति यही सोचने पर बाध्य होता है कि सबसे ज्यादा वही ज्योति का साक्षात कर रहा है। सबके सम्मुख त्रिलोचन। जिन्हें त्रिलोचन का यह 'सम्मुख' स्वरूप समझ नहीं आया उन्होंने उनमें विरोधाभास भी खूब देखे हैं। खासकर उन्हें 'सीटी' बनाने की कोशिश करने वालों ने।

त्रिलोचन प्रारम्भ में फालतू प्रतीत होते हैं। एक उपेक्षा योग्य छवि वाला देहाती सा आदमी। लेकिन कब वह अनिवार्य हो जाएगा इसे वही जानते हैं जो उनके निकट रहे हैं। और जिन्होंने उनके पारदर्शी रूप की मासूमयत को साक्षात होते देखा है।

बात 26 मई 78 की है। किसी काम से शमशेर जी के मॉडल टाउन वाले घर में गया हुआ था। शमशेर जी से मेरा घनिष्ठ परिचय 1975-76 में हुआ था। उस समय वे मेरी पहली पुस्तक 'रास्ते के बीच' के लिए कविताओं का चयन कर रहे थे। चयन-प्रक्रिया काफी लम्बी चल रही थी। इस दौरान शमशेर जी से साहित्य और-साहित्य जगत के बारे में काफी जानकारी मिली थी। बातचीत में वे कई बार त्रिलोचन, नागार्जुन तथा केदारनाथ अग्रवाल का भी जिक्र करते थे। त्रिलोचन का नाम तब तक मैंने सुना भर ही था। उनके सम्बन्ध में कोई खास जानकारी नहीं थी। दिल्ली विश्वविद्यालय से पढ़ कर निकले व्यक्ति के लिए यह कोई बहुत अनहोनी बात भी नहीं कही जा सकती। उस समय तक सप्तकीय कवियों और कुछ दूसरे सुप्रचारित कवियों की ही रचनाओं से परिचय था। शमशेर जब त्रिलोचन और उनकी कविताओं के सम्बन्ध में कुछ बताते तो उनकी सब बातें नई लगतीं और लगता कि न जाने शमशेर जी क्यों एक अनजाने से कवि को इतना महत्व दे रहे हैं। धीरे-धीरे त्रिलोचन जी के सम्बन्ध में कुछ दूसरे स्रोतों से भी जानकारी मिलने लगी। उनके कवि-व्यक्तित्व से भी ज्यादा उनकी विद्वता के सम्बन्ध में अधिक बातें होतीं।

शमशेर की कविताओं से मेरा अजीब रिश्ता था। क्राफ़्ट मोह लेता था लेकिन कुछ कविताएं टेढ़ी भी नजर आती थीं। नागार्जुन की कविताएँ आकाशीय और रसातलीय विशेषताओं से भरपूर लग रही थीं। मुक्तिबोध का चिन्तन पक्ष तो भाता था लेकिन उनकी कविताओं से फैशनी रिश्ता ही निभा पा रहा था।

एक दिन मैंने बातचीत में शमशेर जी से कह ही तो दिया कि त्रिलोचन जी की कविताओं ने मुझे आकर्षित नहीं किया। उन्होंने कहा कि निराला के बाद त्रिलोचन का नाम सबसे ऊपर जाएगा। इस कवि का अभी मूल्यांकन होना है। मैं समझ गया था कि शमशेर जी त्रिलोचन की कविताओं को ज्यादा गम्भीरता, मेहनत और समझ के साथ पढ़ने की सलाह दे रहे थे। बाद में मैंने पाया कि 'दिगन्त' को पहले मैंने सचमुच ठीक तरह से नहीं पढ़ा था।

नामवर जमीन पकड़कर चलने की आदत डालो - त्रिलोचन

त्रिलोचन निरे कवि नहीं थे। बिना आलोचक की मुहर के भी वे अत्यंत पारखी थे। निजी क्षणों में तो कठोर पारखी। त्रिलोचन बीच बीच में खुद से जुड़े किस्से सुनाने पर आ जाते। अद्भुत। कथा रस से भरे। कहना चाहें तो अतिशयोक्ति से भरपूर। बात आई काशी की और वह भी गंगा की तो हो गए शुरू - भाई, मैं पूरी गंगा पार कर जाता था। एक बार नामवर साथ थे। बोले, मैं भी आपके साथ गंगा पार करूँगा। मैंने कहा ठीक। गंगा में उतर गए। मैं तैरता हुआ आगे निकल गया तो पीछे से नामवर की आवाज आई। मैंने कहा धारा के प्रवाह में खुद को सहज भाव से छोड़ दो। मैंने गंगा पार करने की तरकीब भी बताई। कहा, नामवर गोता लगाते हुए जमीन पकड़कर चलने की भी आदत डालो। इससे थकान नहीं होती न। लेकिन क्या देखता हूँ कि गोता लगाने के बाद वहीं के वहीं नामवर बाहर आ गए और उनके गले में भैंसे का कंकाल फंसा हुआ था। जानते हो न क्यों? अरे भाई वे तो जमीन पकड़ कर ही बैठ गए। त्रिलोचन जो प्रहार पर प्रहार सहने के दर्शन में विश्वास रखते थे, कहीं न कहीं, भीतर ही भीतर नामवर सिंह की उपेक्षा प्रहारों से भी आहत लगते थे। हालांकि खुलकर नहीं कहते थे। खुलकर कहने वालों में मुझे केवल एक केदारनाथ अग्रवाल ही मिले थे। त्रिलोचन असल में सबसे ऊपर जगत शंखधर, रामविलास शर्मा और शिवदान सिंह चौहान को मानते थे।

उनका कहना था - 'सामाजिक दृष्टि से जो लोग कविताओं की आलोचना करते हैं, वे जितना समस्याओं को खतियाने का श्रम करते हैं उतना कविता के बनाव पर नहीं। जाहिर है कि ऐसी आलोचना में कविता की पहचान का पता नहीं चलता, समाज और उसकी समस्याओं का थोड़ा-बहुत पता चले तो चले। समाचार भी कभी-कभी कविता के लिए प्रेरक होते हैं लेकिन कोरे समाचारों को कविता का रूप देना सबके लिए सम्भव नहीं। इसी कारण कवि-गोष्ठियों की कविताएँ सुनते समय लगता है कि हम समाचारों पर छन्द अथवा मुक्त छन्द में टिप्पणी सुन रहे हैं। यह प्रवृत्ति बहुत दूर तक ले जाने वाली नहीं है। हिन्दी की पिछले दशक की कविताएँ खास पहचान लेकर आयी हैं। ये कविताएँ नये वातावरण का ही रूप बोल-चाल की शैली में पेश करती हैं। बोलचाल में कविता को ऊँचाई देना सबके लिए सुकर नहीं।'

मैं केवल तुकों और बंदिशों से ही बिदक गया था - अपने पूर्वाग्रहों के कारण।

उस दिन शमशेर जी ने बताया कि त्रिलोचन जी दिल्ली में आ चुके हैं और उनके पास ठहरे हैं। लगभग तीन-साढ़े तीन बजे के बीच में दो व्यक्ति वहां आए। शमशेर जी ने उनमें से एक व्यक्ति से मेरा परिचय कराया। वे व्यक्ति त्रिलोचन शास्त्री थे। दूसरे व्यक्ति को शमशेर नहीं पहचान पा रहे थे। मैं देख रहा था कि शमशेर जी की दशा का मजा त्रिलोचन मुस्कुरा-मुस्कुरा कर ले रहे थे। खैर दूसरे सज्जन की हंसी फूटी तो पहचान में आए। शमशेर जी ने एकदम कहा - 'अरे ये तो बनारस के चन्द्रबली सिंह हैं।' इस सारे दृश्य में मैंने पाया कि त्रिलोचन बहुत ही मजाकिया स्वभाव के व्यक्ति हैं। पहली भेंट होने के कारण मैं जरा संकोच कर रहा था। त्रिलोचन जी ने चन्द्रबली सिंह से कहा कि ये दिविक रमेश हैं यानी दिल्ली विश्वविद्यालयी कवि। यह कह कर वे हंस दिए। और भी कई मजाक हुए। मैं चौंका - कोई व्यक्ति पहली ही मुलाकात में इस हद तक अनौपचारिक भी हो सकता है। आगे बात बढ़ी तो मैंने समझ लिया कि यह व्यक्ति मस्त और अनौपचारिक तो है ही, आत्मीय भी।

तब तक कितनो ही को 'दिविक' का वास्तविक आशय नहीं मालूम था। बल्कि मैंने तो मजाक में यह भी कहा था कि दिविक माने दिमाग विहीन कवि। सुनकर जोर से हँसे त्रिलोचन। बोले - हाँ, जानते हो, कवियों को दिमाग विहीन ही माना जाता है। फिर उन्होंने मेरे पहले कविता-संग्रह 'रास्ते के बीच' का जिक्र करते हुए कहा - यह बड़ी बात है कि शमशेर ने तुम्हारी कविताओं का चयन किया। इसकी एक प्रति केदारनाथ अग्रवाल को भेजी? न भेजी हो तो तुरन्त भेजो। शमशेर ने भी हाँ में हाँ मिलायी। और बता दूँ कि मैंने 'रास्ते के बीच' की प्रति केदार जी को भेजी। उन्होंने इस पर लगभग 21 पृष्ठों का समीक्षा-लेख लिख कर भेजा, जो बाद में उनकी पुस्तक 'विवेक विवेचन' में संकलित हुआ। मुझ जैसे नए और अनजान कवि के प्रति त्रिलोचन का वह व्यवहार चौंकाने वाला लगा था। और यह भी कि केदारनाथ अग्रवाल ने कितना अधिक महत्व दिया था त्रिलोचन और शमशेर की राय को। ऐसा विलक्षण सम्बन्ध और ऐसी विलक्षण समझ।

इसके बाद बातचीत का जो सिलसिला शुरू हुआ तो बागडोर त्रिलोचन जी के हाथ में थी। एक स्थिति तो यह आ गई कि वे ही बोल रहे थे - बाकी सब सुन रहे थे। निराला की कविताओं की सही व्याख्या, कालिदास का ऋतुवर्णन, कौवे तथा दूसरे पक्षियों का स्वभाव, क्षेत्रीय भाषाओं का महत्व, दिल्ली तथा बनारस के पान तथा पान वालों का भेद और जाने किन-किन विषयों पर वे बोलते चले गए। बीच-बीच में मजाक भी चलता रहा। मैं उनके अनुभव, और ज्ञान के दायरे तथा स्मरण-शक्ति पर चकित था। डर यही था कि कहीं वे ऐसा प्रश्न न कर बैठें, जिसका उत्तर मुझे आता ही न हो (और मखौल उड़ जाए)।

मैं देख रहा था कि त्रिलोचन अपना ज्ञान बघारने या दूसरों को नीचा दिखाने के लिए नहीं बोल रहे थे। उनके पूरे व्यवहार में कहीं भी ऐसा कुछ नहीं था, जबकि मेरे अनुभव में ऐसे बहुत से लेखक हैं, रहे हैं, जो अपने ज्ञान की थोड़ी-बहुत पूंजी को भी दूसरे व्यक्ति को आतंकित करने, नीचा दिखाने या अपने को बहुत बड़े रूप में प्रस्तुत करने के लिए ही इस्तेमाल करते हैं। उनकी तुलना में मुझे यह व्यक्ति बहुत ही आत्मीय और ग्रामीण लगा। यह तो दूसरे व्यक्ति को पूरा सम्मान देते हुए, उसे विश्वास में लेते हुए अपना ज्ञान बांट रहा था। त्रिलोचन के व्यक्तित्व का यह पहलू तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब भिन्न रुचि के व्यक्ति के आगमन के साथ ही वे विषय परिवर्तन करके उसकी रुचि के विषय पर बोलना शुरू कर देते हैं। उनके सम्पर्क में आए हुए लोग इस बात के गवाह हो सकते हैं कि त्रिलोचन ज्ञान और अनुभव का वह पहाड़ नहीं है, जो भयभीत कर दे या आतंकित करके भगा दे बल्कि वह तो व्यक्ति को जिज्ञासु बना कर उसके समक्ष अपने को पूरा खोलने का प्रयत्न करता है। शायद ऐसे ही स्वभाव वाले व्यक्ति को संत कहते हैं। उस दिन तीन बातों का पता चला। त्रिलोचन किसी के साथ पहली मुलाकात में ही अनौपचारिक होकर मजाक कर सकते हैं, दूसरे, सबसे ज्यादा खुद बोलना पसन्द करते हैं, तीसरी और खास बात कि जो कुछ भी बताते, अपने-ज्ञान के प्रदर्शन के लिए नहीं, उसे न्यौछावर कर देना चाहते।

मैंने मन ही मन निश्चय किया कि मैं उनकी कविताएं एक बार फिर पढूंगा। 'धरती' का दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हो चुका था। वह खरीदा। 'गुलाब और बुलबुल' मिली नहीं। 'धरती' को पढ़ा तो 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' कविता पढ़कर मैं दंग रह गया। इतनी पुरानी कविता एकदम नयी लग रही थी। खासकर 'कलकत्ता पर बजर पड़े' पंक्ति ने तो हिला ही दिया। इस एक पंक्ति ने कलकत्ता का वह अनुभूत चरित्र मेरे सामने खड़ा कर दिया था, जिसमें हाथझ रिक्शा खींचते हुए लक्ष्यहीन बिहारी मजदूर चालकों को देखकर रोंगटे खड़े हो गए थे। बाद में जब त्रिलोचन जी से पता चला कि कभी वह कविता कुछ खास लोगों के द्वारा कविता ही नहीं मानी गयी थी तो मुझे लगा कि सचमुच अभी इस कवि का मूल्यांकन होना बाकी है। इसके बाद तो एक ओर इनसे घनिष्ठ से घनिष्ठ संबंध होता चला गया तथा दूसरी ओर इनके एक के बाद एक तीन संग्रह भी प्रकाशित हो गए। जितनी अंतरंगता बढ़ी उतना ही त्रिलोचन को जाना भी। त्रिलोचन को जान लेना जरूरी तौर पर उनकी कविताओं को ठीक से या अपने ढंग से समझ लेने के काम आ रहा था। उनकी कविताएं उनके व्यक्तित्व के एकदम करीब पड़ती हैं। उनमें वैसी दूरी नहीं है जो बहुत से मुखौटाधारी नए कविओं के संदर्भ में सच है। उनको कहते सुना था कि कवि जो लिखता है, उसे वैसा ही होना चाहिए। बहुत दिनों के बाद, अम्मा की जब मृत्यु हो चुकी थी, त्रिलोचन जी से मिला तो पाया कि वे कितना टूट चुके थे। एक लम्बे समय तक कविता तक नहीं लिख सके।

जब नामवरजी ने अपनी आंखों में जबरन थमे आंसू पोंछ लिए

डॉ दिविक रमेश

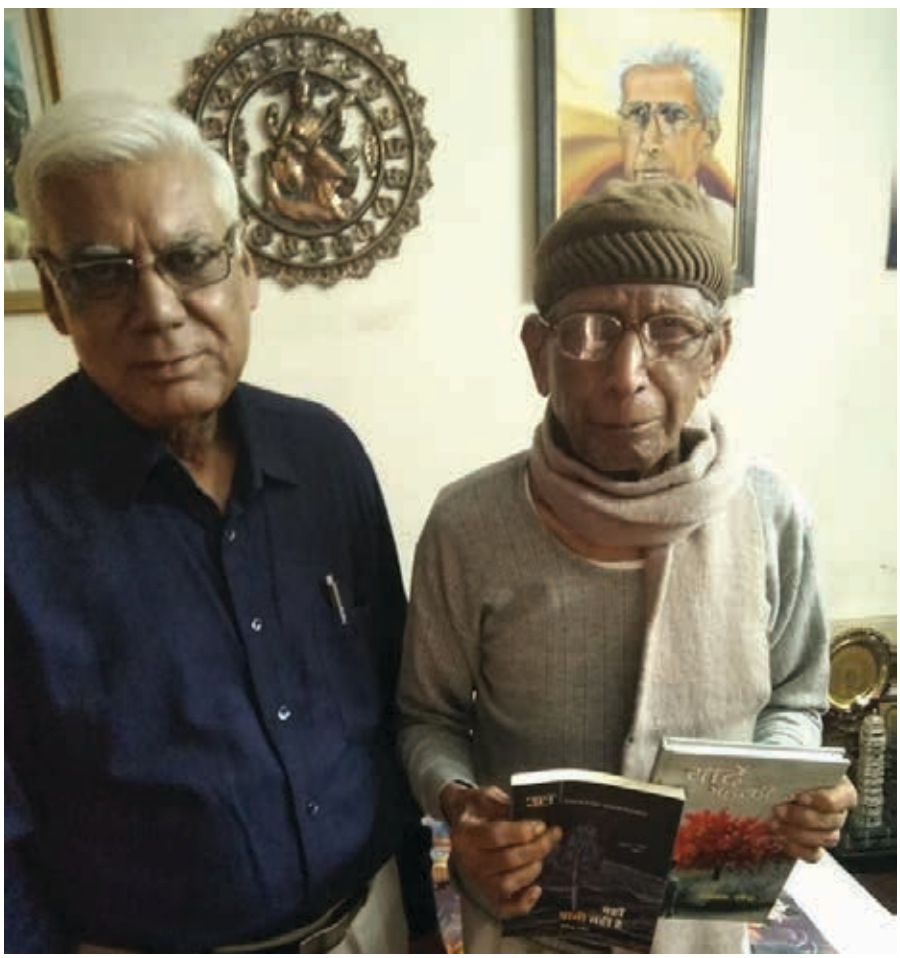

कोई-कोई दिन ऐसा आता है, जो अपार सकून देकर हमें आनंदित छोड़ जाता है। मेरे जीवन का ऐसा एक दिन 8 नवम्बर, 2017 रहा। भारत भारद्वाज के साथ नामवर जी के घर जाने का अवसर मिला। नामवर जी का अपार्टमेंट दूसरी मंजिल पर है। लगभग 27 सीढ़ियां चढ़ कर। मैं आगे था और भारत जी पीछे। प्रायः सदा की तरह दरवाजा नामवर जी ने ही खोला। मैंने प्रणाम किया। नामवर जी के चेहरे पर चिर परिचित मुग्ध कर देने वाली मुस्कान-पंखुरी खिल गई थी। धीरे-धीरे सप्रयास सीढ़ियां चढ़ते हुए भारत जी भी पहुंच चुके थे। नामवर जी को देखते ही उनका पहला प्रश्न था- 'आप इतनी सीढ़ियां कैसे चढ़ते हैं?' नामवर जी का त्वरित उत्तर था (आवाज भले ही थोड़ी हल्की-दबी हो पर तेवर वही)- 'सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते ही तो यहां तक पहुंचा हूं।' बैठ गए। भारत जी ने भैया की पुस्तक भेंट की। कुछ देर पुस्तक और लेखों के बारे में बातें हुईं। इसके बाद मैंने भी अपनी दोनों पुस्तकों (कविता संग्रह : वहां पानी नहीं है और संस्मरणों की पुस्तक : यादें महकी जब) की प्रतियां दीं। नामवर जी ने दोनों पुस्तकों को हाथ में थामा। अपने स्वभाव के प्रतिकूल अपना मोबाइल फोन ऑन किया और झट से लोकार्पण की मुद्रा में पुस्तकें आगे कर लीं। मैं और भारद्वाज जी खड़े हुए तो नामवर जी भी खड़े, यह कहते हुए कि आप खड़े हैं तो मैं भी खड़ा होऊंगा। यही तो नामवर हैं। वह उठे, धीमी चाल से भीतर गए। लौटे तो, हमें चौकाते हुए, उनके हाथ में दो गिलास और पानी की एक बोतल। उन्होंने अफसोस जताया कि घर पर किसी के न होने के कारण वे चाय नहीं पिला पा रहे हैं। खाना वे खा चुके थे लेकिन हमारे खाने की फिक्र भी उन्होंने जतायी। मुझे शमशेर याद आए। आवभगत में वे भी कमाल के थे। इसके बाद कृष्णा सोबती, मुक्तिबोध और न जाने साहित्य से जुड़े कितने ही रचनाकारों और मुद्दों पर चर्चा हुई। भारत भारद्वाज ने यह कहते हुए कि, आपको काफी कष्ट दिया, अब आराम कीजिए, चलने की बात उठाई, जिसकी हां में हां मैंने भी मिलाई। मुझे क्या पता था कि गर्भ में एक अविस्मरणीय विलक्षण घटना छिपी थी। दिव्य भी कह सकता हूं। मैंने देखा, नामवर जी की आंखें नम हो आई थीं झ गीलीं। बहुत धीमी वाणी थी। अस्फुट सी। बस इतना भर सुन सका- 'अहोभाग्य मेरे .. आप आए।', और उन्होंने जबरन थमे आंसू पोंछ लिए।

कविताओं के लय-ताल के बीच बांसुरी में रम गए नरेश सक्सेना

डॉ. ओम निश्चल

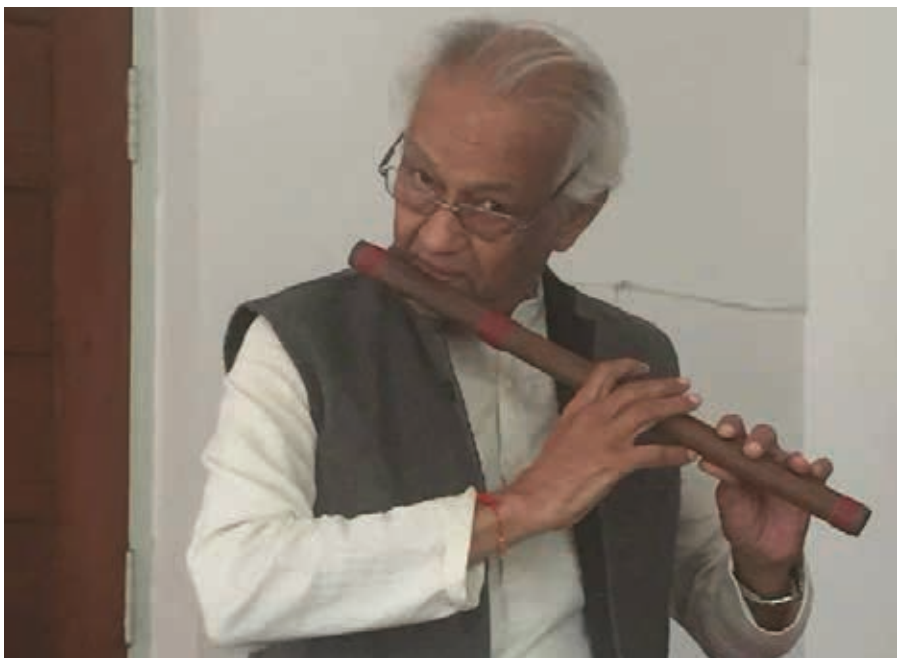

हाल ही में, लखनऊ का एक व्यस्ततम दिन। किसी ने आखेट नहीं किया, न पहले से कोई शेड्यूल था। और ऐसे में सुबह का श्रीगणेश नरेश सक्सेना से हो, फिर तो कहने ही क्या। नरेश जी से गीतों की चर्चा छिड़ी तो उनके गीत याद हो आए। उन्होंने अपने कुछ पुराने गीतों को यह कह कर सुनाया कि ये हिंदी के सीधे-सादे वाक्य हैं, अर्थात अच्छा गीत अच्छे वाक्यों में घटित होता है। फिर अन्य कुछ कवियों की कविताओं को लय-ताल के साथ पढ़ कर सुनाया। नरेश जी से गुफ्तगू के बीच ही कहानीकार एवं युवा चिकित्सक डॉ स्कंद शुक्ल आ गए। हमारे साथ छंद मर्मज्ञ डा. जितेन्द्र कुमार सिंह संजय भी थे। उन्होंने छंद चर्चा छिड़ते ही हस्तक्षेप किया। वर्णिक मात्रिक पर बल देते हुए। नरेश जी ने सहज होते हुए कहा कि यह तो कभी ध्यान नहीं दिया, कितनी मात्राएं और वर्ण हैं पर सहज वाक्यों में ही मैंने गीत लिखे हैं। इस बीच संजय की शार्दूलविक्रीड़ित चर्चा ने नरेश जी को सम्मोहित किया। तभी नरेश सक्सेना ने अपनी कलाई के घटते लचीलेपन की चर्चा करते हुए बांसुरी उठा ली। उनके बांसुरी वादन में अब कलाइयों का खलल पड़ने लगा है। खैर, इस बीच नरेश जी बांसुरी में रम चुके थे। एक गीत की ऐसी धुन उन्होंने बजाई, जैसे कुछ देर को दोपहर ठहर सी गई।

कुछ देर बाद हम डॉ स्कंद के साथ उनके घर गए। मां डॉ सरोज शुक्ला से मिलना हुआ। लखनऊ विश्वविद्यालय के पुराने दिन स्मृतियों के तहखाने से बाहर निकल आए। वह मेरे ही गुरु की शिष्या रही हैं। गुरुवर डॉ शिवशेखर मिश्र, मातृदत्त त्रिवेदी, नवजीवन रस्तोगी, प्रो अशोक कालिया, सारे अध्यापक चर्चा में आए। यों तो जग में बड़े सुखनवर पर उनमें सरताज मुनव्वर, शाम गहराती कि इससे पहले शायर मुनव्वर राणा से दुआ-सलाम करने के लिए हमने ओला की शरण ली और जा पहुंचे लालकुआ ढींगड़ा अपार्टमेंट, जहां ऑफिस की कुर्सी पर अधनिद्रा में वह हमारा इंतजार कर रहे थे। पहुंचते ही चाय इत्यादि के बीच कुवैत के मुशायरे का हालचाल जाना। फिर कुछ मुख्तसर निजी बातें। राजेन्द्र जैसे अनूठे आश्चर्य की तरह राणा को देख रहे थे। उन्होंने अपने एक मित्र, जो राणा के फैन हैं, से उनकी बात भी कराई तो वे चमत्कृत-से हो उठे। हम लोगों ने राणा की सेहत की दुआएं कीं। पिछले लगभग तीन साल राणा के हक में बहुत अच्छे नहीं रहे। सेहत के लिहाज से। कितनी ही बार अस्पताल आना-जाना हुआ। पर पिछले साल आई उनकी आत्मकथा 'मीर आ के लौट गया' ने जिस तरह लोगों को उनका मुरीद बनाया है, यह साबित हुआ है कि उनके गद्य की चासनी भी एक तार वाली है। एक बार आप उनकी तहरीर से मुखातिब हों तो फिर मुंह नहीं मोड़ सकते। राणा आज थके-थके से थे। उनके भीतर जैसे जिन्दगी ने भी कुछ थकान भर दी है, तभी दो ताजा शेर सुनाए उन्होंने, आंखें भर आईं -

मेरी मुट्ठी से ये बालू सरक जाने को कहती है,
कि मेरी जिन्देगी अब मुझसे थक जाने को कहती है,
मैं अपनी लड़खड़ाहट से परेशां हूँ, मगर पोती
मेरी उंगली पकड़ कर दूर तक जाने को कहती है।

हमें गुफ्तगू करते दो घंटे बीत चुके थे। कुवैत की थकान उतारने और अधूरी नींद की गोद में सो जाने के लिए राणा को छोड़ हम विदा हुए और आनन-फानन में दिल्ली की ट्रेन पकड़ी। लखनऊ जिस निमित्त आना हुआ था, निशंक जी की जन्मशती के अवसर पर, कितने पुराने मित्र मिले, विजय राय, डा डीएम मिश्र, सतीश आर्य, योगींद्र द्विवेदी, बंधु कुशावर्ती, अलका अस्थाना। मन खिल-सा गया और अपने प्रिय गजलगो शिव ओम अंबर को सुनकर लगा कि मैं जैसे किसी गजल गांव में पहुंच गया हूं। उनके साथ ही युवा उत्कर्ष भी मिले, जिनमें साहित्य एक संभावना की तरह विद्यमान है।

हमारी देह का तपना तुम्हारी धूप क्या जाने

डॉ. ओम निश्चल

विनोद श्रीवास्तव के गीतों में जैसे एक कोयल कूकती है। वे लखनऊ के दिन थे। आकाशवाणी की कवि गोष्ठियों में, जिनका संचालन अक्सर विजय किशोर मानव किया करते थे। उन्हीं दिनों एक गोष्ठी में कानपुर के युवा गीतकार विनोद श्रीवास्तव को सुना। वे सुना रहे थे - 'हमारी देह का तपना तुम्हारी धूप क्या जाने।' वे सुना रहे थे कि जैसे कोई कोयल विषाद में कूक रही थी। फिर उन्हें कई बार सुनना हुआ। वर्ष 1987 में उनका पहला गीत संग्रह आया- 'भीड़ में बांसुरी'। कानपुर गीतकारों का शहर रहा है। यहां सनेही और हितैषी की मुठभेड़ प्रसिद्ध है। इस शहर से रामस्वरूप सिंदूर, उपेंद्र, शील, कन्हैयालाल नंदन, शतदल, विजय किशोर मानव, हरीलाल मिलन और उद्भ्रांत जैसे गीतकारों का नाता है। कभी अपने शुरूआती दिनों में नीरज ने यहीं रह कर लिखा था- 'वो कुरसवां की अंधेरी सी हवादार गली। मेरे गुंजन ने जहां पहली किरन देखी थी।' उसी शहर से विनोद श्रीवास्तव आते हैं। उन दिनों जागरण परिशिष्ट में व धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान में बस एक बार छपने से लोगों की गली-गली चर्चा होने लगती थी और यहां से स्वीकृति पत्र भर मिल जाए तो लोग उसे प्रमाणपत्र की तरह सहेज लेते थे।

कानपुर के इसी जनसंकुल नगर से भीड़ में जब कोई बांसुरी की कल्पना करता है तो वह इस अपार कोलाहल में सुरीले छंद घोल कर माहौल को मुखरित करता है। मजदूरों के इस शहर से शील जैसे यथार्थवादी प्रगतिवादी कवि हुए तो सिंदूर, उपेंद्र, शतदल, विनोद श्रीवास्तव जैसे कोमल स्वर के हिमायती भी। दूब अच्छत चंदन जैसी सम्मोहक भाषा का जो उन्माद होता है कुछ कुछ वैसा ही उन्माद विनोद श्रीवास्तव के गीतों में। आज झाड़-पोछ में 'भीड़ में बांसुरी' मिली तो विनोद अचानक याद हो आए। उनके गीत अवचेतन की नौका में तिर उठे।

एक बार कानपुर के लाजपत भवन में आयोजित एक कवि सम्मेलन में विनोद के मुक्तकों व गीत पाठ को सुनकर मंच से उठकर कवि सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे सोम ठाकुर ने उन्हें गले लगा लिया और माला उनके चरणों में डाल दी थी। हालांकि मंचीय कवियों के ये आम लटके-झटके ही माने जाते हैं पर सोम ने मन से कहा कि '52 वर्षों की साधना के फलस्वरूप आपने जो माला सम्मान से मेरे गले में डाली है, उसकी उतरन इस युवा गीतकार के गले में तो नहीं डाल सकता, इसलिए उसे उसके चरणों में अर्पित करता हूँ। उसकी कविता को यही मेरा नमन है।'

कहते हैं, विनोद पूरी कशिश से अपने गीत पढ़ते रहे और जब मंच से नीचे बैठे तो देर तक तालियों की गड़गड़ाहट होती रही। कानपुर स्मार्ट से स्मार्ट कवि को भी हूट करने पर आए तो देर नहीं लगती पर सरस्वती के ऐसे साधक हों तो वे भी कहीं ऐसे कवियों को दूर से सुन रही होती हैं।

'भीड़ में बासुरी' उठाई तो उनका एक संग्रह 'अक्षरों की कोख से' भी याद आया। उस पर छोटी सी टिप्पणी लगता है कि कभी 'नया ज्ञानोदय' में लिखी थी। पर मन से लिखना टलता ही रहा। विनोद के गीतों में वह सांद्रता है जो रागात्मकता के कुलीन तटबंध तोड़ देती है और उनकी आवाज दूर कही उपत्यकाओं से आती सुकोमल प्रतिध्वनियों में बदल जाती है। तभी तो उनके गीत जैसे आमंत्रण देते हुए जान पड़ते हैं - 'बांह में बांह डाले हुए। आइये हम चलें घाटियों में। देखिए मेघ काले हुए। आइये हम चलें घाटियों में।' एक गोष्ठी की मुझे याद है, विनोद ने एक गीत का स्थायी पढ़ा- 'एक खामोशी हमारे बीच है। तुम कहो तो तोड़ दूँ पल में।' छोटे बहर के इस गीत को इस खींच के साथ उन्होंने पढ़ा कि स्टूडियो में मंत्रमुग्ध सन्नाटा-सा। विनोद का एक मुक्तक उन दिनों बहुत पसंद किया जाता था -

मैं अगर रूठ भी गया तो क्या, मैं अगर छूट भी गया तो क्या,
तुमको मिल जायेंगे कई दर्पन, मैं अगर टूट भी गया तो क्या?

देख रहा हूं कि यह संग्रह 28 साल पुराना है। विनोद 55 की पैदाइश हैं। साठ को छू लिया है उन्होंने। पर कवि भले ही बूढ़ा हो जाए, गीतकार कभी बूढ़ा नहीं होता। विनोद का यह गीत होठों पर साधने का प्रयत्न कर रहा हूं और एक मीठी-सी धुन मेरा पीछा कर रही है-

स्वप्न की झील में तैरना
और गहरे कभी डूबना
मुक्त आकाश में फैलना
बंधनों में कभी ऊबना
गीत छूकर ऋचा फिर गयी
छंद के गांव में खो गए।

मुस्कराता हुआ चंद्रमा
गुनगुनाती हुई चांदनी
सिंधु में तैरती पूर्णिमा
सोमरस घोलती रागिनी

रुप छूकर घटा फिर गयी
सोचिये हम कहां खो गए।

देह छूकर हवा फिर गयी
गंध के गांव में खो गए।

विनोद श्रीवास्तव पर बातें करनी हों तो अनंत हैं। उनके गीत गुनगुनाने हों तो कहना ही क्या। कविता के विपुल अध्यवसाय के बावजूद यह जानता हूं कि यह मन बड़ा उन्मन है। इसे कविता का पूरा रसायन चाहिए। आज तो गीत की पाठशालाएं चलाई जा रही हैं। लोग सीख रहे हैं छंद की ओर लौटना। जीवन से जो लय विदा हो रही है, उसे लोग सहेजे रहने के लिए प्रतिश्रुत हैं। विनोद का ही एक गीत मुझे गीत के प्रति आश्वस्त करता है- 'गीत हमेशा ही होता है, सुधि की सांझ भोर की रचना।'

गीत की एक पूरी ऋतु जीने वाले विजय किशोर मानव : उन्हें सबसे पहले 1978-79 के आसपास लखनऊ में देखा। सुंदर, सुडौल, छरहरे। आकाशवाणी की कवि गोष्ठियों के सरताज संचालक। प्रोड्यूसर सनीलाल सोनकर के प्रिय कवि। जिस पैस्टोरल इमेजरी की सराहना अज्ञेय जी ठाकुर प्रसाद सिंह के गीतों के लिए किया करते थे, वैसी ही अलक्षित इमेजरी उनके गीतों में होती। तब वे युवा थे तो उनके बिम्ब भी वैसे ही युवा आमों में बौर की तरह रसीले हुआ करते। फिर ऐसे गीत भी उन्होंने लिखे कि गिरिजा कुमार माथुर के शब्दों में कहने का मन हो आए। छाया मत छूना मन। होगा दुख दूना मन। वे तब दैनिक जागरण (कानपुर) के साहित्य संपादक हुआ करते थे। सो गीतकारों के लिए लगभग आराध्य। गीत के अधिष्ठाता। जागरण में तब छपने वाला वह गीत दुर्लभ ही हुआ करता। छपते ही गली-गली उसकी चर्चा होती।

आज कहने को नवगीत की पाठशालाएं हैं, पर दिल से निकलने वाले गीत कितने कम लिखे जाते हैं। तुकबंदियों ने गीत की गरिमा गिरा दी। उमाकांत मालवीय, ओम प्रभाकर, नरेश सक्सेना सरीखे गीत लिखने वाले बाद में कम ही हुए। पर उनके बाद की पीढ़ी में विजय किशोर मानव ने वह मुकाम हासिल किया कि गीत को फिर से उच्च आसन पर बिठा सकें। हम जैसे गीत प्रेमियों को, जिन्हें नई कविता की मॉडर्न सेंसिबिलिटी ज्यादा रास आती थी, का भी एक मन गीत की स्वर लहरियों में डूबता उतराता रहता।

मानव हमारी पीढ़ी के हीरो थे। उन्हीं दिनों का उनका लिखा एक पद आज भी भूलता नहीं- 'धूप तिरछी सुबह नदी छूती हिंलती लहरों में ऐसे दिखती है। जैसे कोई शकुंतला लेटी अपने दुष्यंत को खत लिखती है।' धूप का ऐसा रोमांटिक चित्र शायद ही कहीं मिले। तीस सालों से ज्यादा का समय हुआ, पर यह गीत स्मृति के दुकूल में लिपटा ही रहा। अरसा हुआ, उन्हें गीत लिखे हुए। लिखे भी तो ज्यादा से ज्यादा एक या दो बंद। बिल्कुल ठाकुरप्रसाद जी की टेक पर। पर कौल यह कि हो तो सम्यक वरना चंद्रसेन विराट बनने की जरूरत नहीं।

फिर वे कविता की दिशा में मुड़े। 'आंधी में यात्रा' और 'राजा को सब क्षमा है' जैसे संग्रह आए। गजलों का एक संग्रह भी। हमें लगा, गीतों का यह राजकुंवर इसी उम्र में तथागत हो चला। अब गीत का क्या होगा। हमें रह रह कर ठाकुरप्रसाद सिंह याद आते। उनका गीत याद आता- 'पात झरे। फिर फिर होंगे हरे। पात झरे। कोयलें उदास मगर फिर फिर वे गाएंगी। नए नए चिह्नों से राहें भर जाएंगी। खुलने दो कलियों की ठिठुरी ये मुट्ठियाँ। माथे पर नई-नई सुबहें मुस्काएँगी। गगन-नयन फिर-फिर होंगे भरे।' पर यह अच्छा हुआ कि उनका लिखना बंद नहीं हुआ। हां गीत के तमाम सारथी अवश्य एक एक कर मंचों की भेंट चढ़ते गए। मानव जी ने मंच का वैसा वरण नहीं किया। वे गोष्ठियों के कवि बने रहे।

आज न कैलाश गौतम हैं, न उमाकांत मालवीय, न नईम, न शंभुनाथ सिंह। रमानाथ अवस्थी, रामावतार त्यागी, किशन सरोज का जमाना भी देखते देखते बीत गया। कुछ स्वर छिटके बिखरे जरूर हैं जैसे बुद्धिनाथ मिश्र और यश मालवीय, पर बस मंच पर यह याद दिलाने के लिए कि भई सब कुछ अस्त नहीं हुआ है। ऐसी दुर्भिक्ष की वेला में मुझे वे आचार संहिताएं ध्यान में आती हैं कि गीत कैसे लिखे जाने चाहिए। 'पांच जोड़ बांसुरी' शीर्षक संचयन के वे पांच लेख पांच कसौटियां हैं, जिनका पालन किया गया होता तो गीत के स्वर्णिम दिन अभी विदा नहीं होते। कहने को आज भी लोग गीत लिख रहे हैं, पर गीत की जैसे पूरी ऋतु ही मुरझा गयी है।

गीत की इस प्रतिकूल वेला में मानव याद आते हैं। मुझे लगता है वे फिर गीत का गांडीव उठाएं और नए जमाने के नए गीत लिखें। अरसा हुआ, उन्होंने कुछ गीत मुझे भेजे थे। गीत के लिए उन्मन मन को राहत देने के लिए। वे मेरे चित्त के किसी कोने अंतरे में ठिठके रहे। आज वह पोटली खुली तो मन खिल उठा। पतझर के बाद टहनियों में आए पल्लव की तरह जन्म लेते उल्लास में इन गीतों की नमी भी शामिल है, इसमें संशय नहीं। देखिए क्या लिखते हैं मानव -

ताल भरता सूखता हर साल,
पर यही है अब नदी का हाल।
एक तो पानी बहुत कम
दूसरे लोहू घुला,
प्यास का मारा शहर कहता-
कि जो भी है पिला,
मुस्तकिल डाले हुए हैं जाल
ताल भरता सूखता हर साल,
पर यही है अब नदी का हाल।

कहने की बात नहीं कि मानव ने इन गीतों में अपनी आत्माा उड़ेल दी है। शब्द संयम से रचे ये गीत यथार्थ की नब्ज पर उंगली रखते हैं। आज जब मंच पर गीतों के तथाकथित पहरुए उसके शील को निर्वसन करने में लगे हैं, विजय किशोर मानव के हाथो में वह हुनर है कि वे गीतों की मरुभूमि पर आज भी अपने यतिगतिलयाभिषेक से एक नंदन कानन रच सकते हैं।

स्मृति-शेष 09 दिसंबर पर विशेष: रघुवीर सहाय कभी भोले कवि नहीं लगते, पहली नजर में बहुतों को भले कवि भी नहीं लगते होंगे!

मरे हुए लोगों की भीड़ में 'रामदास'

'रोज-रोज थोड़ा-थोड़ा मरते लोगों के झुंड में' एक जीते-जागते व्यक्ति की विडंबना का साक्ष्य 'रामदास' कविता में रचा गया है। यह अकेली कविता एक खंडकाव्य जैसी लगती है। यहां रघुवीर सहाय निस्संगता और तटस्थता को तोड़कर, सबको एक ही अपराध से जोड़कर हिला देते हैं। इस कविता को पढ़ने और जानने के बाद निस्संग और तटस्थ होने के अपने अपराध को पहचानने की शक्ति प्राप्त होती है।...रघुवीर सहाय भी सम्पादक 'दिनमान' के रूप में 'रामदास' दिखने लगते हैं। ....रघुवीर सहाय और रामदास एक-दूसरे के भी पर्याय हो जाते हैं और दोनो ही हमे एक सम्पृक्त और लगाव से भरे हुए समाज की रचना के लिए झकझोरते रहेंगे।

लीलाधर जगूड़ी

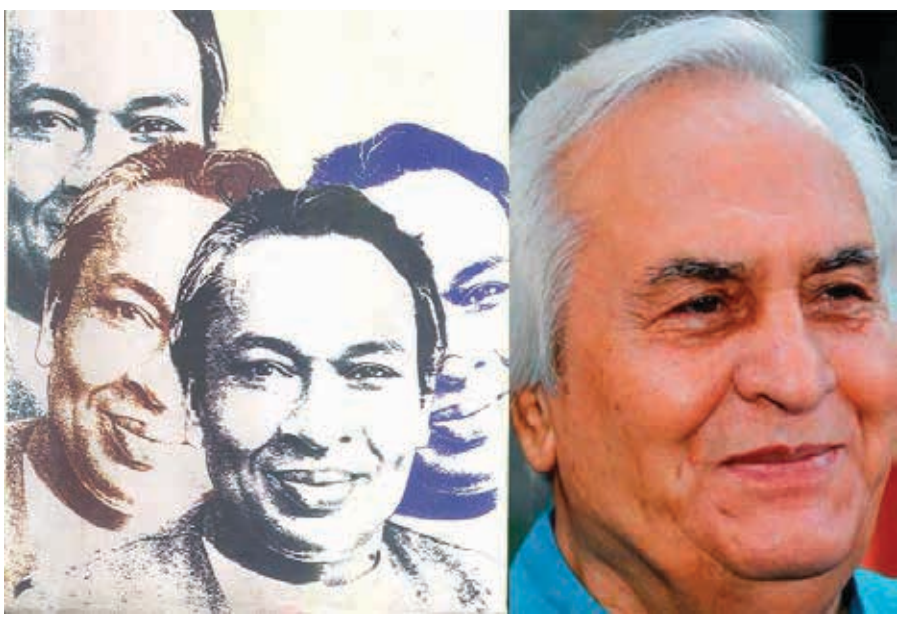

छायावादी कविता ने प्रकृति का इतना मानवीकरण कर दिया कि प्रकृति अपना अर्थ खो बैठी। मानव का प्रकृतीकरण हो गया। न प्रकृति, प्रकृति रही, न मनुष्य, मनुष्य रहे। प्रयोगवादियों ने और नई कविता ने भाषा और कथ्य के स्तर पर छायावाद के मायावी स्वरूप को काफी कुछ भेदने की कोशिश की। नई कविता भी किसी चीज को किसी अनुभव से जोड़कर उसकी असाधारणता को नहीं, बल्कि उसकी साधारणता को दिखाने लगी। इस प्रकार छायावाद के विरुद्ध नई कविता ने अपना साधारणीकरण किया।

रघुवीर सहाय भी इसी प्रस्थान काल के कवि हैं। उन्होंने सन साठ के बाद की अकविता का प्रस्थान और अवसान काल भी देखा। ज्यों ही हम समकालीन कविता को देखते हैं, रघुवीर सहाय को अपने समय में, अपने साथ पाते हैं। वे कविता को समकालीनता के इतिहास के हिस्सा बनाते रहे। उन्होंने छायावादियों और पूर्ववर्तियों द्वारा चुरमुरायी हुई, पपड़ियायी हुई, चिपचिपायी हुई, फफुंदियायी हुई और बजबजायी हुई प्रकृति को जानबूझ कर अपनी कविता में नहीं आने दिया। वे सिर्फ अपने समय के मनुष्यों को ले आए। उनकी कविता में, जहां वे हैं, वहां प्रकृति पृष्ठभूमि के अलावा कुछ नहीं है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय की कविता में 'मार तमाम लोग ही लोग' हैं। रघुवीर सहाय की कविता में 'मार तमाम लोगों' के बीच अनेक प्रकार से आई हुई 'स्त्री' अलग से दिखाई देती है। उसमें मार तमाम औरतों की जगह भारतीय स्त्री के तमाम दुख आए हैं। लेकिन मरते हुए तमाम लोगों के समाज में जीवन की रक्षा के उपाय उन्होंने पुरुष और स्त्री के भेद के रूप में सरलीकृत नहीं किए। समय के एक ही किले में पुरुष और स्त्री, दोनो ही अपने सपनों के खंडहर में एक साथ रहते हैं, जहां चीख ही उनकी कथा कहती है।

आधुनिकता का सबसे बड़ा गुण निस्संगता है। इस निस्संगता ने धीरे-धीरे तटस्थता का रूप ले लिया। तटस्थता एकदम पक्षधरता के विरुद्ध हो गई। आधुनिक तकनीक वाला, आधुनिक उपार्जन वाला मुष्य समाज धीरे-धीरे निस्संग, तटस्थ और पक्षविहीन होता चला गया। इस समाज के हर मनुष्य को दूसरे की विपत्ति, निजी विपत्ति से अलग दिखने लगी। निस्संगता के इस अवगुण ने प्राकृतिक और

मानवीय संबंधों को अप्राकृतिक और अमानवीय सम्बंधों में बदल दिया। गुण अवगुण में बदल गए और अवगुण गुणों में। रघुवीर सहाय की कविता इस मुठभेड़ में यथार्थ और आदर्श के बीच अपनी स्थितियों के सामने हमे ले जाती है-

'सुनो, वहां कहता है/मेरा प्रतिनिधि/मेरी हत्या की करुण कथा/...मैं कि जो अन्यत्र भीड़ में मारा गया था/....था एक मेरे हाथ में। मेरी स्वाधीनता जन्मभूमि पर जन्म लिये होने का मेरा प्रमाणपत्र।' (आत्महत्या के विरुद्ध)

इस सारी हत्या-प्रधान स्थिति में रघुवीर सहाय प्रकृति को भी विरोध में कुछ रचते हुए देखते हैं - 'देखो वृक्ष को, देखो वह कुछ कर रहा है/किताबी होगा कवि, जो कहेगा, हाय पत्ता झर रहा है।' प्रकृति अलग से यहां नहीं दिखती। ऐसा जानबूझ कर है। रघुवीर सहाय प्रकृति और मनुष्य को अलग-अलग खानों में रखकर नहीं देखते, जैसे छायावादी देखते थे- 'मेरी कविता में उषा के भीतर मेरी मृत्यु भी लिखी/चिड़िया के भीतर है मेरी राष्ट्र भावना, बच्चों में दुख/माना सब कुछ गड़बड़-सड़बड़ है पर मैंने यों ही देखा था।' इसी कविता में अपना पूरा मर्म बताते हुए कवि कहता है- 'अलग-अलग डिब्बों में मेरी पीड़ाएं मत बंद कीजिए।'

रघुवीर सहाय कभी भी 'भोले कवि' नहीं लगते, 'भले कवि' भी वे बहुतों को पहली नजर में न लगते होंगे। रघुवीर सहाय का होना, अपनी कविता में एक सतर्क व्यक्ति का होना है। उनकी कविता हमेशा एक तर्क और एक स्थिति की मुठभेड़ से विडंबना को उजागर करती है। पढ़ने वाला भी अगर सतर्क नहीं है तो वह रघुवीर सहाय की कविता को ठीक से नहीं पा सकता। प्रकृति भी उनके लिए एक कामकाजी पात्र है, इतिहास में विजड़ित कोई तस्वीर नहीं- 'सेनाएं मारकर मनुष्य को, खोदकर जमीन को/डेरा डाल देती हैं/किसी तरह आम का पेड़ बचा रहता है।' और अंत में कवि कहता है कि 'उसी आम के नीचे बांधकर मारा था/ उन्होंने अठारह बरस के उन लड़कों को/जो सेना को नहीं मानते थे।' इस प्रकार रघुवीर सहाय कहना चाहते हैं कि 'प्रकृति कठोर है और आदमी हिंसक है।' वे फिर याद दिलाते हैं- 'देखो, मैंने कहा एक से, शोक सभा हो रही वहां/वहां पेड़ के नीचे, क्या तुम नहीं जानते?'

'रोज-रोज थोड़ा-थोड़ा मरते लोगों के झुंड में' एक जीते-जागते व्यक्ति की विडंबना का साक्ष्य 'रामदास' कविता में रचा गया है। यह अकेली कविता एक खंडकाव्य जैसी लगती है। यहां रघुवीर सहाय निस्संगता और तटस्थता को तोड़कर, सबको एक ही अपराध से जोड़कर हिला देते हैं। इस कविता को पढ़ने और जानने के बाद निस्संग और तटस्थ होने के अपने अपराध को पहचानने की शक्ति प्राप्त होती है। 'रामदास' कविता एक मध्यम वर्गीय प्रकृति-वर्णन से शुरू होती है- 'चौड़ी सड़क, गली पतली थी/दिन का समय, घनी बदली थी।' यह पृष्ठभूमि प्रकृति है। इसके बाद लगता है, कोई प्रेम कविता घटित होने वाली है। ये पंक्तियां मन में ऐंद्रिक अवसाद जगाती हैं। चौड़ी सड़क के बाद पतली गली और विस्फारित दिन का समय घनी बदली से आच्छादित है- मेघाच्छन्नो दुर्दिनः। यह कविता छंद के वेश में भी प्रेम की कविता न होकर दुर्दांत समय में दुर्दिन की कविता बन जाती है। तीसरी पंक्ति बिजली की तरह कौंधती है- 'रामदास उस दिन उदास था।' पतली गली की घनी बदली में उदास रामदास एकाएक बिजली की तरह चमकता और बुझ जाता है- 'अंत समय आ गया पास था/ उसे बता यह दिया गया था, उसकी हत्या होगी।'

यहां छंद, शिल्प और प्रेमभाव तीनों एक षड्यंत्र के हिस्से बन जाते हैं। स्थिति और सीमा से पहली पांच पंक्तियां हमे हाथ पकड़कर अपनी तटस्थता से बाहर ले जाती हैं और रामदास के साथ कर देती हैं। रघुवीर सहाय अपनी एक अन्य कविता में याद दिलाते हैं- 'मगर अब याद रहे, छंद नहीं चाहिए, वह सारी चिड़ियों की अतुकांत चहक को बिगाड़कर रख देगा।' 'रामदास' कविता के लिए रघुवीर सहाय की, पहले की अनेक कविताओं की स्थितियां पृष्ठभूमि का काम करने लगती हैं। वे अपनी कविताओं के लिए अपनी ही कविताओं में एक 'पृष्ठभूमि' प्रकृति की तरह रचते चलते हैं- 'कालातीत समय चारो ओर से घिर आया/न जीवन था उसमें, न मृत्यु थी/सिर्फ बेहिसाब असंगतियों की धड़कती सजा'... 'और लाखों आदमियों का दर्द, जो मैं जानता हूं।'

कविता आगे बढ़ती है। रामदास आगे बढ़ता है। पहली पंक्ति 'चौड़ी सड़क गली पतली थी' का छंद और इत्मिनान, दोनो विदा हो जाते हैं। दूसरे चरण में एक नई टेक पैदा हो जाती हैः 'धीरे-धीरे चला अकेले', फिर एक निरा गद्यात्मक वाक्य, 'सोचा, साथ किसी को ले ले', और जैसाकि होता है, जब आप चल पड़ते हैं तो आपकी चाल बताती है कि कहां पर आपके विचार बदल गए। विचार बदलते ही चाल बदल जाती है- 'फिर रह गया, सड़क पर थे' यानी इतने सारे तमाम लोगों के बीच किसी को साथ लेने की क्या जरूरत है, जबकि वे मौन और निहत्थे लोग हैं। यहीं पर रघुवीर सहाय की एक उक्ति याद आती है कि 'आज भाषा ही मेरी एक मुश्किल नहीं रही।' निहत्थे और मौन लोगों ने सड़क पर जो स्तब्धता पैदा कर रखी है, इसी से साक्षात डर दिखने लगता है- 'सभी जानते थे यह, उस दिन उसकी हत्या होगी।' यह आदमी ज्यों-ज्यों हमारे पास आता जाता है, त्यों-त्यों लगता है कि अंत समय पास आता जा रहा है। बिल्कुल फिल्म की तरह देखने लगते हैं हम सारी स्थिति को। सारी स्थिति जैसे देखने वालों के वश में ही नहीं रह गई। किसी तरह की चेतावनी देने की भाषा जैसे बेकार हो चुकी हो। रघुवीर सहाय की ही भाषा में कहें तो 'भाषा की बधिया हमेशा वक्त के सामने बैठ जाती है।'

'रामदास' कविता में लोगों के झुंड की जो निस्संगता है, वह कविता की बनावट में, उसकी शुष्क भाषा में भी मौजूद है। कहीं कोई 'उफ', 'हाय', 'चीख' और 'नारा' नहीं है। कोई पोस्टर नहीं, और न ही कहीं गोली है, न खतरे का सायरन-

'खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रखकर के आए
लोग सिमट कर आंखें गड़ाए
लगे देखने उसको, जिसकी तय थी, हत्या होगी।'

इस दृश्य में दहशत, स्तब्धता और घटना की गति, तीनों हैं। तीनो अपना-अपना काम 'सधे कदम रखकर के' कर रहे हैं। मौन और निहत्थे लोगों का,

मारे जाने वाले आदमी को देखने के लिए सिमटना पूरी निस्संगता के प्रति क्रोध से भर देता है। इस स्थिति पर क्रोध और घृणा पैदा करना ही कवि का उद्देश्य है। 'हंसो-हंसो, जल्दी हंसो' में ही रघुवीर सहाय जैसे इस कविता की व्याख्या कर रहे हों- 'जिन्होंने मुझसे ज्यादा झेला है/वे कह सकते हैं कि भाषा की जरूरत नहीं होती/साहस की होती है/फिर भी बिना बतलाए कि एक मामूली व्यक्ति एकाएक कितना विशाल हो जाता है/कि बड़े-बड़े लोग उसे मारने पर तुल जाएं/रहा नहीं जा सकता।'

प्रकृति और झुंड-के-झुंड लोगों के सान्निध्य में आज 'रामदास' की हत्या होनी है। भूगोल में चौड़ी सड़क और पतली गली का नुक्कड़ मौजूद है। मौसम में दिन का समय और घनी बदली मौजूद है। रघुवीर सहाय की कुछ अन्यत्र की पंक्तियों को भी लें तो पृष्ठभूमि कुछ अधिक उजागर होती है और सामने वाले दृश्य पर कुछ अधिक रोशनी पड़ने लगती है-

'दिल्ली के वसंत का वह एक विशेष दिन था/गरमी थी और हवा थी, जो धूप को उड़ाए लिए जाती है/मौलसिरी के बड़े से पेड़ तले छांह का छितरा हुआ घेरा था/सामने लहराते हुए एक हजार फूलों के रंग से डरकर/सिमटे हुए लोग उसमें बैठे थे/मृत्यु की खबर की प्रतीक्षा में।' इस 'प्रतीक्षा' और 'रामदास' कविता के बीच एक सिलसिला है। एक अंतसंबंध है। कवि ने एक काम और किया- 'एक झीना पर्दा था दोनो के बीच/लोगों के और मौसम के/मैंने उसे हटा दिया।' निस्संगों की स्तब्ध उपस्थिति में - 'निकल गली से तब हत्यारा/आया, उसने नाम पुकारा/हाथ तौलकर चाकू मारा/छूटा लोहू का फोव्वारा/कहा नहीं था उसने, आखिर उसकी हत्या होगी।'

नाम पुकार कर हत्या करने वाली संस्कृति में बिना नाम जाने हत्या करने वालों की स्थिति की तुलना यहां की जा सकती है। सब कुछ बहुत जल्दी-जल्दी घटित हो रहा है लेकिन कविता में वह एक-एक जर्रे के साथ स्लो-मोशन में दिखाया जा रहा है। हाथ तोलकर चाकू मारने की प्रक्रिया का वर्णन हमारी संवेदना के भोथरे हो जाने का भी वर्णन है। किसने कहा था यह? 'उसने' यह कहा था? कौन है यह 'उसने'? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढना एक महान संकट से गुजरना है। यहां भी एक दूसरी कविता पृष्ठभूमि बनाती है- 'जब हम महान संकट से गुजर रहे हों/पढ़े-लिखे जीवित लोग/एक अधमरी अपढ़ जाति के संकट को दिशा देते हुए/तब आप समझ सकते हैं कि एक मरे हुए आदमी को मसखरी कितनी पसंद है/पर तब मैं पूछूंगा नहीं, सौ मोटी गर्दनें झुकी हैं बुद्धि के बोझ से/श्रद्धा से कि लज्जा से/मैं सिर्फ उन गंजी चांदों पर टकटकी बांधे रहूंगा/अपनी मरी हुई मशीन की टकटकी।' यहां संकट और प्रश्न को समझने की कुंजी सी हमे मिलती है और लगता है कि मसखरी के लिए इस प्रेम गीतों वाले छंद का प्रयोग हत्या वाली कविता लिखने के लिए किया गया है। प्रेम-कविता की-सी टेक में हिंसा का वर्णन और वह भी स्वकेंद्रित निस्संग लोगों के बीच। कैसे समय के कैसे लोगों के बीच जी रहे हैं हम? क्या हम सब खुद को इस सिमटी हुई भीड़ में नहीं देख रहे हैं, जो रामदास की हत्या देखने आई है? यहां बचे रहने की कोई संभावना नहीं है। न व्यक्ति के बचे रहने की, न संवेदना के बचे रहने की। यहां पुर्जे उड़ाने वाली खबर को लोग सच होते हुए देखना चाहते हैं। यहां व्यक्ति के मारे जाने का मलाल कहीं नहीं दिखता बल्कि 'आखिर बात सच्ची थी' का उत्साह दिखाई देता है। कौन, किससे शर्त जीत रहा है? 'कहा नहीं था उसने, आखिर उसकी हत्या होगी।'

रघुवीर सहाय ने एक मरते हुए समाज के लक्षण पहचानने के लिए 'रामदास' कविता में बहुत से इशारे किए हैं- 'भीड़ ठेलकर लौट गया वह/मरा पड़ा है रामदास यह, देखो-देखो बार-बार कह/लोग निडर उस जगह खड़े रह/लगे बुलाने उन्हें, जिन्हें संशय था, हत्या होगी।'

यहां भी रघुवीर सहाय की एक और कविता, एक प्रश्न पैदा करके प्रश्न का उत्तर देती प्रतीत होती है- 'कौन आदमी है, जो बचा रह जाता है/हर बार जब ताकतवर अपने मन का सारा संसार रचने को सामूहिक हत्याएं करते हैं/.....और कौन है वह, जो जैसे ही पहचाना जाता है/मार दिया जाता है।' इस कविता में रामदास का परिवार कहीं नहीं दिखता। एक विराट भीड़ भरा समाज दिखता है, जिसकी जानकारी में और जिसकी शर्तों के बीच बिल्कुल आंखों के सामने 'रामदास' की हत्या की जाती है। और जो संचार माध्यमों से प्राप्त सूचना को झूठ होते हुए नहीं देखना चाहता है। कवि का उत्तर तो पहले से ही मौजूद है- 'कोई नहीं रोता है/हां, मारी नहीं कई तो विधवा रोती है।'

इस कविता में हम खुद को कभी 'रामदास' के रूप में देखने लगते हैं और कभी मौन व निहत्थे, निस्संग लोगों के रूप में ही खुद को देखने लगते हैं।

'रामदास' में सारी भीड़ मरे हुए लोगों की भीड़ लगती है। लेकिन यह भी है कि वे जीवित और तटस्थ लोग हैं। वे स्थितियों से गुजरते हुए अपने को देखते हैं पर हस्तक्षेप नहीं करते। रामदास कौन है? वह, जिसकी हत्या होगी, और हो जाती है? रघुवीर सहाय भी सम्पादक 'दिनमान' के रूप में 'रामदास' दिखने लगते हैं। 'दिनमान' के सम्पादक पद से जिस तरह उन्हें हटाया गया और उनका सारा परिचित समुदाय जिस तरह निष्क्रिय और चुप बैठा रहा, उससे उस कविता की निस्संग भीड़ से तुलना की जा सकती है। इस कविता को पढ़ते हुए रघुवीर सहाय को हटा दिए जाने और 'दिनमान' को बंद किए जाने के अफवाह भरे दिनो की याद आती है। कहा नहीं था उसने, आखिर रघुवीर सहाय अपमानित करके निकाले जाएंगे और 'दिनमान' बंद होगा। आज एक पत्रिका के बंद होने का जैसा श्राद्ध स्वयं सम्पादक तक कर लेते हैं, वैसा रघुवीर सहाय नहीं कर सकते थे। याद आती है कविता में वर्णित स्थिति, जिसमें स्वयं रामदास ने भी अपनी हत्या का रंचमात्र भी प्रतिरोध नहीं किया।.... हिंदी जगत की निस्संगता, चुप्पी और तटस्थता की विडंबना से भरा सारा वातावरण 'रामदास' कविता में मौजूद है। उनके समकालीनों और मित्रों की उदासीन व जड़ प्रकृति इस कविता की पृष्ठभूमि में मौजूद है। किसी भी तरह की, निरीह से निरीह आत्मीयता का कहीं कोई स्पंद नहीं। न उस घटना में, न कविता की भाषा में। एक पारदर्शी कविता में चट्टान जैसी असम्पृक्ति और अपारदर्शिता। रघुवीर सहाय और रामदास एक दूसरे के भी पर्याय हो जाते हैं और दोनो ही हमे एक सम्पृक्त और लगाव से भरे हुए समाज की रचना के लिए झकझोरते रहेंगे।

सुबह-सुबह बाबा नागार्जुन खुर्दबीन से मेरी किताब पढ़ रहे थे : शहंशाह

राधाकृष्ण पाठक यानी कवि-शायर 'छंदराज' को गुजरे अभी ज्यादा वक्त नहीं गया है। वर्ष 2016 के जनवरी महीने की ही तो बात है, जब वह हमारे बीच से हमेशा के लिए अनुपस्थित हो चले थे। उनके जाने के बाद भी पटना से अपने शहर मुंगेर जाकर यह कभी नहीं लगा कि छंदराज भाईजान की मृत्यु हो चुकी है। यही लगता रहा है कि मेरे मोबाइल की घंटी बजेगी, उधर से छंदराज भाई की मुहब्बत भरी आवाज आएगी - 'आपके कविमित्र कुमार विजय गुप्त से मालूम हुआ कि आप अपने घर आए हुए हैं। मौका मिले तो आ जाइए मेरे घर की तरफ। कई ताजा गजलें हुई हैं। आपको सुनानी हैं। फिर भाभी के हाथो बनी चाय भी तो आपको पीनी है।'

आज का सच है कि मोबाइल की घंटी बजती तो है मगर छंदराज की आवाज नदारद रहती है। तब भी अकेले उनके घर की तरफ का रास्ता पकड़कर उनके एक चक्कर मार ही आता हूँ, जब भी अपने शहर जाता हूँ, इस उम्मीद में कि भाभी अपने घर के दरवाजे पर खड़ी दिख जाएँगी, कहेंगी कि आपके भैया अभी-अभी मयूर चौक की तरफ निकले हैं। छंदराज का बंद दरवाजा खटखटाने की हिम्मत मुझमें नहीं होती। उनका बेकापुर मोहल्ला घूम-फिरकर अपने दरवाजे आकर लग जाता हूँ। छंदराज के साथ गुजारे हुए दिन अब भी जिंदा हैं और उनके साथ के सारे चाहे-अनचाहे दोस्ताना प्रसंग भी।

एक प्रसंग सन 1993-1994 के आसपास का। तब मैं पटना में बिहार विधान परिषद के प्रकाशन विभाग में नौकरी न कर मुंगेर में छोटी-सी दुकान चलाया करता था। मुझे याद है कि एक सुबह छंदराज मेरी दुकान पर आए थे और कहा था कि बेगूसराय में एक बड़ा कवि सम्मेलन हो रहा है। आपको भी दावत है कविता-पाठ की... चलेंगे? मैं मंचीय कभी नहीं रहा। अब भी नहीं हूँ, तब भी नहीं था। उनकी बात मैं उठा नहीं सकता था, सो एक शर्त लगाते हुए कहा कि मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ लेकिन बदले में आपको दरभंगा घुमा कर लाना होगा। बाबा नागार्जुन से मिलाने की मेरी ख़्वाहिश आपको पूरी करनी होगी। उन्होंने मुस्कुराकर कहा था- 'मुझे मालूम है, तुम दरभंगा क्यों जाना चाहते हो!'

मैंने पूछा- 'क्यों, मैं दरभंगा बाबा नागार्जुन के लिए नहीं तो और किनके लिए जाना चाहता हूँ?' मैंने बेहद मासूम-सा सवाल उन पर छोड़ा।

उन्होंने छूटते ही कहा- 'मैंने भी घाट-घाट का पानी पीया है शहंशाह भाई।'

मैंने अनजान बनने की भरसक कोशिश करते हुए पूछा- 'आपका इशारा क्या है?'

उन्होंने कहा- 'तुम बाबा नागार्जुन के लिए नहीं बल्कि दरभंगा अपनी कवयित्री दोस्त के लिए जाना चाहते हो!'

उन्होंने जैसे मेरे राज को राज न रहने देने वाले स्वर में कहा था। यह उनके मुंह से सुना गया मेरे जीवन का पूरा सच था। उन्होंने मुझे बेगूसराय के बाद दरभंगा ले चलने का वादा किया। बेगूराय से दरभंगा की यात्रा आसान थी। हम दरभंगा सीधे कवयित्री मित्र के घर पहुँचे थे। मित्र का रद्दे अमल हमें अपने दरवाजे पर देखने लायक था। उनके घर उनकी माँ थीं और बहन। बहन खूबसूरत पेन्टिंग

बनाती थीं। हम दोनो मित्र उनके यहाँ दोपहर के वक़्त पहुँचे थे। वहां से हम बाबा नागार्जुन के घर पहुँचे। तब तक दरभंगा के कुछ और युवा रचनाकार साथी आ पहुँचे थे। हम बाबा के यहाँ पहुँचे। बाबा के बेटे शोभाकांत की पत्नी ने हम सबका स्वागत किया। बाबा सो रहे थे। शोभाकांत ने पत्नी से चाय-नाश्ते के लिए कहकर बाबा को जगा दिया।

बाबा हमारे पहुँचने पर बेहद खुश। लंबी बातचीत और हँसी-ठिठोली के बीच बाबा का आदेश हुआ कि हम दूसरे दिन सुबह उनके यहाँ फिर हाजिर हों। साँझ हो चुकी थी। कवयित्री मित्र ने छंदराज भाई और मेरे सम्मान में युवा कवि दीपक मंजुल के घर पर कविता-पाठ आयोजित कर रखा। दीपक मंजुल फिलहाल नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली में कार्यरत हैं। काव्य-पाठ में पहुँचने से पहले मेरे अनुरोध पर वह दरभंगा आरक्षी अधीक्षक आवास पहुँचे। उस समय मेरे कविमित्र और आरक्षी अधीक्षक ताज हसन दरभंगा में ही पदस्थापित थे। वहां से हम सीधे कविता-पाठ के लिए दीपक मंजुल के घर पहुँचे। वहां छंदराज भाई ने अपनी गजलें दिल खोलकर सुनाईं। उनसे ये लाइनें कई दफे सुनाने के आग्रह हुए -

खैर नहीं चिड़िया की खोंते से जैसे बाहर निकली,
ताक लगाए चिड़ीमार है, जिसके हाथ गुलेल है।

भूख नहीं जाने है कोई जूठा-कूठा जात-धरम,
यार निराला का भिक्षुक तो आदिम युग का खेल है।

छंदराज शायरी लिखते नहीं थे, जैसे ईजाद किया करते। वह जनकवि-शायरों में शुमार थे। आलोक धन्वा समकालीन कविता में तो छंदराज समकालीन गजल में। दोनों मित्र। दोनों एक ही शहर मुंगेर से। आलोक धन्वा जिन जीवन-स्थितियों को अपनी कविता के माध्यम से प्रकट करते, उनको छंदराज अपनी गजलों के माध्यम से। आलोक धन्वा के कविता-पाठ का अंदाज आज भी जितना अनोखा है, छंदराज के गजल- पाठ का अंदाज भी वैसा ही विस्मित करने वाला था। यूँ कहिए की मंच लूट लेने वाले शायर थे। मेरा सौभाग्य है कि मुझे आलोक धन्वा और छंदराज दोनों का सान्निध प्राप्त रहा। इस निकटता से मैंने बहुत कुछ सीखा भी है।

खैर, मैं छंदराज के साथ हुई दरभंगा-यात्रा की उत्तेजना-उत्सुकता को सहेज रहा था। दीपक मंजुल के यहाँ हुए कविता-सत्संग के बाद रात खाना उन्हीं के यहाँ हुआ। हमारे लिए रात्रि-विश्राम का इंतजाम जहाँ किया गया था, वह एक छापाखाना था। नीचे छापाखाना, ऊपर के तल्ले में रहने और सोने के लिए बिस्तर भी लगा था। दरभंगा-यात्रा की वह रात मैं इसलिए भी नहीं भुला पाता कि मच्छरदानी लगे होने के बावजूद हम दोनों को वहाँ के मोटे और शैतान मच्छरों ने सारी रात सोने नहीं दिया। मच्छरों की हद जब बढ़ने लगी तो रात के तीन बजे के आसपास हम दोनों ने शहर घूमने का मन बनाया। हम छापाखाना से निकलकर दरभंगा की सड़कों पर, गलियों में यूँ ही भटकते रहे, वहाँ के मच्छरों को कोसते हुए। रात के अँधेरे में इस नए-अदेखे शहर में किन सड़कों, किन गलियों, किन मुहल्लों से गुजरे थे, ये तो मालूम नहीं, बस जेहन में यह कैद कर रखा था कि वापस छापाखाना कैसे लौटना है।

फिर वहीं से फीट-फाट होकर बाबा नागार्जुन के घर जाना था। सच यही है कि हम जिन सुखों को तलाशने निकलते हैं, वे सुख न मिलकर कोई और सुख मिल जाता है। जब हम दोनों बाबा के घर सुबह पहुँचे तो वह जैसे हमारी ही प्रतीक्षा में थे। शोभाकांत ने हम दोनों का स्वागत किया। बाबा उस वक्त खुर्दबीन लेकर कोई किताब पढ़ने में मशगूल थे। आदाब-सलाम के बीच देखकर हैरत हुई कि बाबा के हाथ में तो मेरी ही कविताओं की पहली किताब थी- 'गर दादी की कोई खबर आए'। बाबा ने हमे अपने पास बैठाया। छंदराज को तो सभी जानते थे। बाबा के पास अपनी किताब देखकर मुझे जो सुख मिला, उसे कैसे व्यक्त किया जा सकता है। बाबा ने भी मेरी इस अनुभूति को महसूस लिया था। मुझसे बड़ी मुहब्बत से बोले- 'शहंशाह, तुम जैसी कविताएँ लिखते हो, तुमसे तुम्हारे शहर के लिखने वाले लोग ईर्ष्या करते होंगे।' छंदराज ने यह टिप्पणी सुनकर मेरे बारे में विस्तार से बताना चाहा तो बाबा ने प्यार से उन्हें डाँटा और सामने की एक खपड़ैल घर की तरफ इशारा करते हुए बोले- 'भाई छंदराज, आप खपड़ा देखो!' बाबा का आशय था कि वे मेरे कवि के बारे जानते हैं। कुछ दिनों बाद ही बिहार सरकार के राजभाषा विभाग ने इस कविता-संग्रह को पुरस्कृत भी किया। इस मुलाकात के बीच बाबा की बहू चाय लेकर आईं। उन्होंने बाबा से कहा कि हम दोनों बाबा के घर की तरफ से सुबह चार बजे के आसपास गुजरे थे। बाबा ने बहू के इस खुलासे पर एक लंबी मुस्कान लेते हुए कहा था- 'हर सच्चा कवि सूरज के जगने से पहले जग जाता है।' जबकि सच्चाई यही थी कि हम अँधेरे में किस मोहल्ले, किस गली, किस सड़क से गुजरे थे, कुछ पता ही नहीं था। बाबा नागार्जुन से इस सुखद मुलाकात ने हमारी यात्रा सफल कर दी थी।

मुंगेर वापस लौटते हुए छंदराज भाई जान ने यात्रा को अपनी गजलों से भर दिया। उनकी शायरी हमारे समय के दर्द को बखूबी बयाँ करती है। उन्होंने अपनी शायरी के सफर को एक नया तर्जे-बयाँ दिया। नया तर्जे-बयाँ इस मायने में कि गजल का अपना जो नाजुक अंदाज है, अपनी जो माशूकाओं वाली अदा है, अपने जो नाज-नखरे होते हैं, उसे तोड़ते हुए अपनी शायरी को वक़्त और हालात से उन्होंने जोड़े रखा। अपनी शायरी को बहुसंख्य जनता से जोड़े रखा। उनकी गजलों की गहराई देखकर हम इन बातों का सहज अंदाजा लगा सकते हैं। हिंदी गजल का उल्लेखनीय बहुत सारा छंदराज भाई जान की शायरी के बिना अधूरा लगेगा। इसलिए कि वे हिंदी गजल के बेहद सक्रिय शायरों में थे। उनकी सख़्तमिजाजी की वजह से समकालीन उनकी चर्चा हिंदी गजल आलोचना में करने से परहेज करते रहे हैं। मेरा मानना है कि कोई चर्चा करे, न करे, इससे कोई शायर मर नहीं जाता। उनकी शायरी उनको जिंदा रखने के लिए काफी है। राधाकृष्ण पाठक 'छंदराज' अपनी नायाब शायरी के साथ हमेशा हिंदी गजल में जिंदा रहेंगे-

भीड़ से भागे तो बस सहरा ठिकाना हो गया।
हम झुलसते रह गये, साया फसाना हो गया।

हर तरफ तन्हाइयों की नागिनें डँसतीं रहीं,
हमको तो बोले हुए जैसे जमाना हो गया।

जुल्मतों में ज़िन्दगी गुजरी हमारी आज तक,
रोशनी के रूठने का डर सयाना हो गया।

लीक से भटके तो जंगल में भटकते रह गये,
अब तो इस भटकाव से ही आशिकाना हो गया।

इक मुसलसल आँधियों का सिलसिला पलता रहा,
गर्द - सी उड़ती रही शीशा पुराना हो गया।

मृत्यु इस पृथ्वी पर जीव का अंतिम वक्तव्य नहीं : कुंवर नारायण

कभी न बंद होंगे दुनिया में ईमान के खाते

मुक्तिबोध के प्रिय युवा कवियों में एक 'अंतरात्मा की पीड़ित विवेक-चेतना और जीवन की आलोचना' के कवि कुँवर नारायण नहीं रहे लेकिन उनके शब्द हमेशा हमारे साथ रहेंगे- 'कहीं कुछ भूल हो, कहीं कुछ चूक हो कुल लेनी देनी में तो कभी भी इस तरफ आते जाते अपना हिसाब कर लेना साफ, गलती को कर देना मुआफ, विश्वास बनाये रखना, कभी बंद नहीं होंगे दुनिया में ईमान के खाते।' 'कविकुंभ' परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि। प्रस्तुत लेख में एक अप्रिय प्रसंग कुंवर नारायण की 'चिता पर भी नकारात्मकता ढूंढ लेने वाले' शवयात्रा के जनगणनाकारों के लिए- 'साहित्य में राजनीति के दुर्गुण आ गए हैं पर साहित्य के गुण राजनीति में नहीं।'

डॉ ओम निश्चल

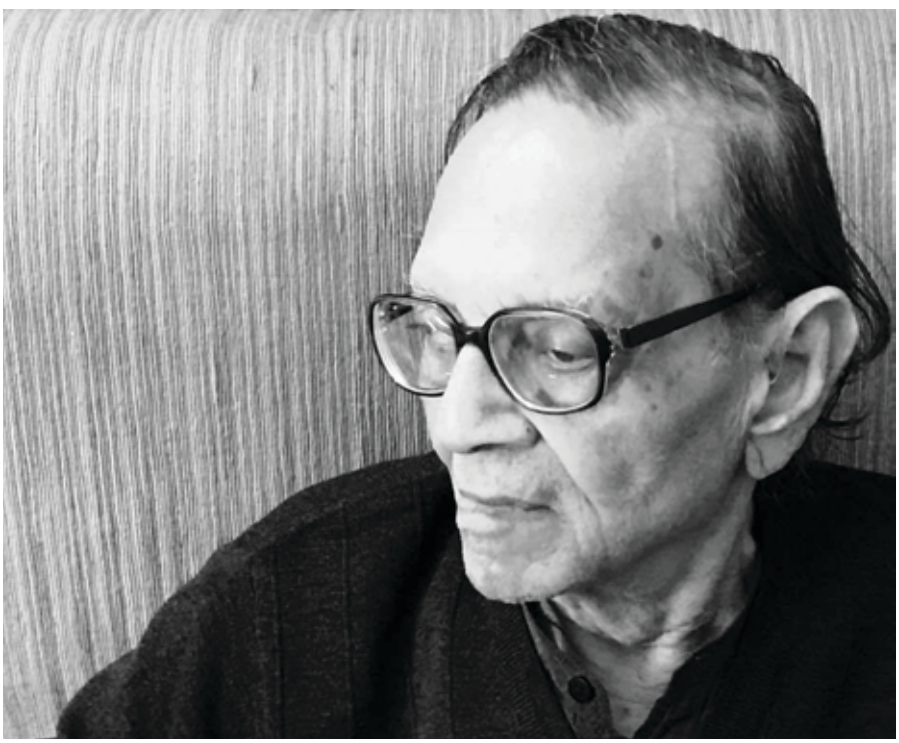

साहित्य जगत में लगभग अजातशत्रु कुंवर नारायण हिंदी के अकेले ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं का भारतीय भाषाओं समेत दुनियाभर की तमाम भाषाओं में अनुवाद हुआ है। वे अज्ञेय द्वारा संपादित तीसरा सप्तक के सहयोगी कवियों में रहे हैं। उनके कैशोर्य काल में परिजनों की मृत्यु के कारण उनके भीतर पैदा हुए विषाद ने उनके कवि को कुछ अलग ढंग से गढ़ा। 'चक्रव्यूह' और 'आत्मजयी' उसी दौर की रचनाएं हैं। आत्मजयी' के केंद्र में नचिकेता है तो 'वाजश्रवा के बहाने' के केंद्र में नचिकेता के पिता वाजश्रवा। 'अपने सामने' के साथ वे सरल होते गए किंतु अनुभूति और संवेदना सघन होती गई। कविता जीवन से जुड़ती गई। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा है- 'एक कविता होती है जीवन के बारे में। एक जीवन में प्रवेश कर जाने वाली कविता होती है।' कुंवरजी की कविताएं पढ़ते हुए मस्तिष्क और दिल पर एक ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिसे साफ-साफ बयान नहीं किया जा सकता। उनके शब्द अपना आतंक नहीं जमाते, वे हमें हौले-हौले उस जगह ले जाते हैं, जहां कविता सच्चे अर्थों में चरितार्थ होती है। उन्होंने स्वयं कहा है, 'मेरी कविताएं तीखी-तर्रार रेखाओं से नहीं बनतीं। उनमें गाढ़े-हल्के रंग के उमड़ते-घुमड़ते बादलों के-से आकार एक-दूसरे में घुलते-मिलते हैं। उन्होंने अनेक विदेश यात्राएं की हैं। पोलैंड के विनाश को देखकर युद्ध और उपनिवेशवाद के अनुभवों का सूक्ष्म प्रभाव उनकी कविता पर पड़ा।

प्रारंभ में अनेक समाजवादियों, कलाकारों, लेखकों से हुई उनकी मुलाकातों से साहित्य के बारे में उनकी समझ परिपक्व हुई। लखनऊ स्थित उनका घर साहित्यकारों, कलाकारों, संगीतकारों, फिल्मकारों का स्थायी ठिकाना था। लखनऊ में रहते हुए उनका अमृतलाल नागर, शिवानी, ठाकुरप्रसाद सिंह, रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, श्रीलाल शुक्ल, कृष्ण नारायण कक्कड़, गिरिधर गोपाल मुद्राराक्षस आदि से नियमित संपर्क-

संवाद रहा। अब इनमें से कोई भी नहीं है। कलाओं के शौकीन इतने कि उनके घर के बरामदे में ही एक बार लखनऊ पधारी संयुक्ता पाणिग्रही ने श्रीलाल शुक्ल, केशवचंद्र वर्मा, सुरेश अवस्थी ठाकुर जयदेव सिंह के समक्ष अपना नृत्य प्रस्तुत किया। शतरंज के खिलाड़ी फिल्म बनने के दौरान सत्यजित राय के लखनऊ आने पर कई बार मुलाकातें हुईं। इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ जैसे साहित्य-संस्कृति संपन्न शहर अब धीरे-धीरे उजड़ रहे हैं। माल और बाजार कल्चर उन्हें आमूल बदल रहा है। इस बदलाव और संकट के प्रतिबिम्ब कुंवरजी की कविता में सूक्ष्मता से आते रहे हैं।

उन्होंने कहानियां थोड़ी ही लिखी हैं पर वे किस्सागोई की बेहतरीन नक्काशी का नमूना हों जैसे। 'आकारों के आसपास' में शामिल सभी कहानियां मनुष्य के चित्त को बारीकी से पढ़ती हैं और अपने संवादों और कथोपकथनों से मुग्ध करती हैं। इन कहानियों को देखें तो यह धारणा टूटती है कि कवि की कहानी में दार्शनिकता का बघार ज्यादा होता है, कहानी कम। उन्होंने अपने ऊपर कभी किसी विचारधारा का दबाव महसूस नहीं किया। वे लेखक की स्वायत्तता को किसी भी विचारधारा से ऊपर मानते रहे हैं। जैसे रचना में, वैसे ही आलोचना में भी किसी पंथ, किसी भी मत का समर्थन उन्होंने नहीं किया। वे यह कोशिश करते रहे हैं कि शुद्ध, निष्पक्ष और अकादमिक समीक्षा का एक उत्तरदायी संसार हिंदी में विकसित हो।

उनका प्रबंध काव्य 'वाजश्रवा के बहाने' में पिता और पुत्र के बीच केवल दो पीढ़ियों के बीच के अंतराल का मसला भर नहीं है बल्कि यह दो दृष्टियों के बीच के अंतराल का भी मामला है। जब भी नई दृष्टियां पुरानी दृष्टियों से टकराती हैं, जीवन को नया अर्थ मिलता हैं। कुंवर नारायण के ही शब्दों में-

कुछ इस तरह भी पढ़ी जा
सकती है एक जीवन-दृष्टि
कि उसमें विनम्र अभिलाषाएं हों
बर्बर महत्वाकांक्षाएं नहीं,
वाणी में कवित्व हो
कर्कश तर्क-वितर्क का घमासान नहीं,
कल्पना में इंद्रधनुषों के रंग हों
ईर्ष्या-द्वेष के बदरंग हादसे नहीं,
निकट संबंधों के माध्यम से बोलता हो पास-पड़ोस,
और एक सुभाषित, एक श्लोक की तरह सुगठित
और अकाट्य हो जीवन-विवेक।

उनका जीवन, उनका काव्य एक सुगठित श्लोक और एक सुभाषित की तरह पठनीय संग्रहणीय है। उनके जीवन और साहित्य पर केंद्रित पुस्तक 'अन्वय' एवं 'अन्विति' के संपादन के सिलसिले में उनसे कई बार घंटों बातचीत का अवसर मिला। उनसे बातचीत कर रचनात्मक समृद्धि का अहसास होता था। वे कहा करते थे, 'साहित्य में राजनीति के दुर्गुण आ गए हैं पर साहित्य के गुण राजनीति में नहीं।' पढ़ने-लिखने के हिमायतियों की सिकुड़ती दुनिया के बारे में उनका कहना था 'गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है।' एक बार मुलाकात में उन्होंने अपनी डायरी 'दिशाओं का खुला आकाश' देते हुए हिटलर का वाक्य उद्धृत किया था - 'नथिंग ऑफ इम्पार्टेन्स इज मियरली गिवेन टू मैन, इवरीथिंग मस्ट बी स्ट्रगल्ड फार।' यानी अच्छी बातें वे हिटलर जैसे तानाशाह से भी ले सकते थे।

कुंवरजी ने लगभग साठ साल रचनात्मक रूप से सक्रिय रहते हुए सब कुछ लिखा, कविता, कहानी, आलोचना, डायरी भी, पर आत्मकथा नहीं। पता नहीं, आत्मकथा से क्यों बचते रहे। डायरी में भी

अपने या औरों के बारे में निजी टिप्पणियां बिल्कुल नदारद हैं। शायद इसे आत्मश्लाघा या प्रायोजित प्रशंसा मानते रहे हों। इसकी क्या वजह हो सकती है? सोचते हुए मेरी निगाह एक दिन उनकी डायरी में दर्ज येव्तुशेन्को के इस वाक्य पर गई, जिसमें लिखा था - 'कवि की कविता ही उसकी आत्मकथा है, अन्य चीजें केवल फुटनोट।' उनकी कविताओं के बीच उन्हें खोजना निश्चय ही एक कठिन काम है, क्योंकि उनकी कविताएं कल्पना और यथार्थ की बारीकियों में आवाजाही करती हैं। 'वाजश्रवा के बहाने' काव्य में एक वाक्य आता है- 'मृत्यु इस पृथ्वी पर जीवन का अंतिम वक्तव्य नहीं है।' जाहिर है, दिवंगत होकर भी वे अपनी कविताओं में सदैव जीवित रहेंगे।

आखिरी में एक हिसाब-किताब उनसे अनचुकता ही रह गया। वह पिछली जुलाई से बीमार थे। हास्पिटल में थे। उनके बारे में प्रिय अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी से लगभग नियमित रूप से खोज खबर लेता रहता था। गए कुछ सालों में उनसे कई बार मिलना हुआ। उनकी पुस्तकें आते ही उन्हें पढ़ने का चाव पीछा करता रहता। फिर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित 'अन्वय' और 'अन्विति : (साहित्य के परिसर में कुंवर नारायण)' के संपादन को लेकर 2012 से कार्यरत रहा। इस बारे में उनके साथ कई बार परामर्श के लिए मिलना जुलना होता रहा पर आंतरिक इच्छा रखते हुए भी वे इसे प्रकाशित न देख सके।

नियति कभी-कभी हमें अपना ऋण चुकाने का समय नहीं देती। इस तरह एक हिसाब-किताब उनसे अनचुकता ही रहा, जो आजीवन सालता रहेगा। उनका न होना हिंदी के नहीं, भारतीय भाषाओं के सबसे बड़े कवि का अवसान है। वे नहीं हैं पर वे हैं, वे रहेंगे, क्योंकि कवि सदैव अमर रहता है। वे अपने शब्दों में सदैव अमर रहेंगे। ह्वाजश्रवा के बहानेह्व झ में उनका कहा ही याद आता है - 'मृत्यु इस पृथ्वी पर जीव का अंतिम वक्तव्य नहीं है।' कुंवर जी ने समय-समय पर अपनी कई पुस्तकें अपने हस्ताक्षर के साथ मुझे दीं। पर हाल में दो पुस्तकें 'लेखक का सिनेमा' और 'न सीमाएं न दूरियां' आईं तो शायद वह ऐसी स्थिति में न थे। भरसक कोशिश थी कि अन्वय और अन्विति उनके चैतन्य रहते उनके चरणों में भेंट कर सकूं। पर क्षमा, उनके रहते उनकी इस आखिरी अभिलाषा को साकार रूप न दे सका। क्षमस्व में कविवर। उनका यह कवि-कथन सदैव याद आता रहेगा झ 'किंचित श्लोक- बराबर जगह में भी पढ़ा जा सकता है एक जीवनझसंदेश कि समय हमें कुछ भी अपने साथ ले जाने की अनुमति नहीं देता, पर अपने बाद अमूल्य कुछ छोड़ जाने का पूरा अवसर देता है।' वह कितना कुछ अमूल्य हमारे मध्य छोड़ गए हैं। वे हमारे कमजोर क्षणों में शब्द-संबल बन कर उनकी याद दिलाते रहेंगे।

अब कुछ बातें कुंवर नारायण की चिता पर भी मठाधीशी और नकारात्मकता ढूँढ़ लेने वालों के लिए। कुँवर नारायण की अंत्येष्टि में केदार नाथ सिंह, अशोक बाजपेयी, मंगलेश डबराल, पुरुषोत्तम अग्रवाल, विष्णु नागर, विष्णु खरे, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, रेखा अवस्थी, असद जैदी, लीलाधर मंडलोई, विमल कुमार, सविता सिंह, प्रिय दर्शन, ओम निश्चल, रवीश कुमार, गीतांजलि श्री, गोपेश्वर सिंह, प्रयाग शुक्ल, हरिमोहन शर्मा, विनोद भारद्वाज, अशोक माहेश्वरी, विनोद तिवारी, अरुण माहेश्वरी, भानु भारती, रणजीत साहा, सत्यानंद निरुपम, विनीत कुमार, अमरेन्द्रनाथ त्रिपाठी, अच्युतानंद मिश्र, सुधांशु फि रदौस, अभिनव प्रकाश, वंशीधर उपाध्याय आदि वरिष्ठ, युवा साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार आदि उपस्थित थे। ये उन लोगों के नाम हैं, जिन्हें मैं पहचान सका या जिनके नाम इस समय मुझे याद आ रहे हैं।

इसके अलावा भी बहुत से लोग थे। कई युवा थे जो अपने प्रिय कवि को अंतिम प्रणाम करने पहुँचे थे। बहुत से लोग अपने प्रिय कवि का अंतिम दर्शन उनके निवास पर जा कर कर चुके थे और श्मशान तक नहीं आए। बहुत से लोग शहर से बाहर थे। मदन कश्यप जी ने तो बाकायदा पोस्ट लगा कर बताया कि उनकी ट्रेन नौ घण्टे लेट हो चुकी थी और वे अपने प्रिय कवि के अंतिम दर्शन के लिए समय से दिल्ली पहुँच पाने में असमर्थ थे। इसके लिये उन्हें बेहद अफसोस भी हो रहा था। अंत्येष्टि दिवस ऑफि स का दिन था। अंत्येष्टि शाम पाँच बजे होनी थी। उस समय दिल्ली की सड़कों पर गाड़ियों का सैलाब बहता है। मैं स्वयं ऐसे ही एक सैलाब में फँस गया था लेकिन किसी तरह पहुँच गया। दो मित्रों को ट्रैफिक में फँस जाने पर आधे रास्ते से वापस जाना पड़ा। दिल्ली एक बहुत बड़ा शहर है। यहाँ किसी भी कार्यक्रम में सबका पहुँच पाना संभव नहीं हो सकता। कोई बीमार हो सकता है और किसी के सामने कोई और मजबूरी हो सकती है।

एक मित्र ने फेसबुक पर अपने किसी मित्र की एक पोस्ट को शेयर करते हुए कुँवर नारायण की अंत्येष्टि के बहाने दिल्ली के हिन्दी साहित्यकारों पर व्यंग्य किया कि अपने प्रिय कवि की अंत्येष्टि में मात्र 20-25 लोग पहुँचे। और कुछ लोगों ने उस पोस्ट पर दिल्ली के साहित्यकारों के प्रति अपना गुस्सा, क्षोभ प्रकट किया। मित्र ने मुझे टैग भी किया। जब मैंने टिप्पणी की और बहुत से नाम गिनाए तो उनका कहना था कि जब ये लोग पहुँचे तो दूसरों को भी मालूम रहा होगा लेकिन वे लोग नहीं गये क्योंकि कुँवर नारायण कोई मठाधीश नहीं थे। मुझे उनकी बात सुनकर चुप रह जाने के अलावा और कुछ कहना नहीं आया। दुख हुआ कि ये ऐसे लोग हैं, जिन्हें चिता पर एक मृत शरीर देखकर यह याद आता है कि यह मृत शरीर कोई मठाधीश था या नहीं।

हिन्दी साहित्य बिरादरी के नाशुक्रे

मुझे यह मानने से बिल्कुल इनकार नहीं है कि हम हिन्दी साहित्य बिरादरी के लोग (सब नहीं लेकिन अधिकतर) निहायत ही नाशुक्रे, संवेदनहीन और अपनी परंपराओं से कटे हुए बल्कि अनभिज्ञ लोग हैं। कुँवर नारायण की मृत्यु के समाचार के बाद जब एक लेखिका को अपने दोस्तों के साथ पिकनिक मनाने वाली फोटो डालते, एक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के अति उत्साही युवा संपादक को मुझ सहित सैकड़ों लोगों को टैग करते अपनी पत्रिका के आगामी अंकों की सूचना देते और उस सूचना पर कई साहित्यकारों को बधाई देते देखा, जब सुबह शोक संदेश लिखने वालों को दूसरों की पोस्ट पर मस्ती करते देखा, जब एक कवयित्री को पत्रिकाओं में छपी अपनी कविताओं को सगर्व सबको दिखाते हुए और बधाइयाँ लेते हुए देखा, जब दो महानुभावों को अपनी प्रोफाइल पिक बदल कर उस पर मिलने वाली बधाइयों के बदले स्माइली बनाते हुए देखा, साथ ही और बहुत कुछ ऐसा ही देखा तो मन में दो ख्याल आये। या तो हम हिन्दी वाले इतने ज़िन्दादिल हैं कि कोई मरे या जिये, दुनिया चाहे इधर से उधर हो जाये पर हमारी मस्ती में कोई फर्क. नहीं पड़ता या हम निहायत दर्जे के स्वार्थी, दिखाऊ प्रवृत्ति से भरे हुए अत्यंत असंवेदनशील लोग हैं, जो कुछ लिख भर देने के लिए कहीं से थोड़ी सी संवेदना खुरच लाते हैं वर्ना अपने साथ पूरा एक युग लेकर चले गये एक कवि के लिए क्या हम 24 घण्टे भी शोक में नहीं रह सकते थे?

शवयात्रा के जनगणनाकारों ने यह भी न सोचा कि दिवंगत को तुम्हारी जनसंख्या से क्या मतलब! केवल चार कांधे चाहिए किसी को भी चिता पर रखने के लिए और कुछ लकड़ियां। फिर जीवन भर निर्विवाद रहे कुंवर नारायण से जीवन में जो भी कभी मिला, वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सकता था। सुबह निधन की सूचना भी उनके विश्वासपात्रों से ही मिली। उन्हें खो चुके व चार माह से उपचार में चूर शोकाकुल परिवार को डिस्टर्ब करना उचित न लगता था तथापि दोपहर तक एक दूसरे से जानकारी हासिल करते सायं 5 बजे दाह संस्कार का पता चल गया और दिल्ली के अधिकांश लेखक पत्रकार संस्कृतिकर्मी पहुंचे। कम लोग भी हों तो क्या इससे लेखक की सारी रचनात्मक कमाई व्यर्थ हो जाती है? क्या उसके लिखने की फलश्रुति महज यह हो कि उसके मरने पर अंत्येष्टि में कितना लंबा जुलूस चलेगा? क्या किसी लेखक को कसौटी पर कसने का यही मानदंड होना चाहिए? क्या ऐसी अवमानकारी पोस्ट लिखते हुए दनादन अपने पित्त का गुबार निकालने पर तुल जाना चाहिए था? क्या लिखने वालों ने सोचा कि अभी यमराज उन्हें बुलाने आ जाएं तो कितने लोग उनकी शवयात्रा में शामिल होंगे? जिस समाज में लेखक सत्ता का प्रतिपक्ष हो, उसकी अंत्येष्टि से सत्ताएं भी विमुख रहें तो आश्चर्य क्या?

कुछ आवाजें हमारे पूरब से आ रही थी। वे कितने लेखक हितैषी हैं, कल उजागर हो रहा था। कल लेखक पत्रकार दयानंद पांडेय ने शवदाह से लौटते हुए सचाई जाननी चाही तो मैंने सारी बात उन्हें बताई। उनसे ही पता चला कि तमाम जनवादी लेखक संगठनों के होते हुए भी अदम गोंडवी की अंत्येष्टि में महज पांच छह लोग ही थे। तभी मुलायम सिंह ने उनके परिवार को सलाह दी थी कि इन्हें गोडा तक जाने का प्रबंध कर देता हूँ, वहां ज्यादा संख्या में लोग मिलेंगे तथा वे सहायक भी होंगे। पर परिवार ने मजबूरी में लखनऊ में संस्कार किया और गिनती के लोग दहाड़ने वाले जन कवि की अंत्येष्टि में शामिल हो सके। यह राजधानी लखनऊ का चेहरा है और क्या बलरामपुर, गोंडा, प्रतापगढ़, इलाहाबाद में स्थिति अलग होगी? ऐसा सामान्य व्यक्ति के साथ भी हो सकता है। पर लेखक कम से कम, राजनेता भले ही चाहे, कभी किसी जुलूस का मुखापेक्षी नहीं होता।

प्रसंगतः याद आया कि कवि कैलाश वाजपेयी की अंत्येष्टि में भी बहुत कम संख्या में साहित्यकार उपस्थित हुए थे जिस पर क्षोभ भरी प्रतिक्रिया हुई थी। 'उनकी स्मृति में आयोजित सभा में हिंदी के सिर्फ दो साहित्यकार थे - अशोक वाजपेयी और मृदुला गर्ग। मित्रों की ओर से बोलने वाले राजनारायण बिसारिया। बाकी सब दिवंगत कवि के घर-परिवार के लोग थे, मित्र-बांधव, पत्नी रूपा वाजपेयी और बेटी अनन्या के परिचित। उनके अंतिम संस्कार में भी साहित्यकारों की उपस्थिति बड़ी दयनीय थी।... इतना बड़ा कवि क्षितिज गुंजा देने वाला अभिव्यक्तिसमर्थ कवि, इतनी बड़ी दिल्ली और साहित्यकारों का इतना छोटा दिल?' तब एक पत्रकार ने पूछा था, क्या हो गया है हमारे समाज को? सारे धूप दीप नैवेद्य फेसबुक पर ही चढ़ा कर इतिश्री कर लेने का चलन बढ़ा है। और तब याद आया चाणक्य का नीति श्लोक - 'राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।' और यहां इतने बड़े साहित्यिक परिवार कहे जाने वाले समाज से सिर्फ दो या तीन लोग! क्या साहित्य में इतने बंधु-बांधव नहीं बचे कि वे श्मशान तक विदा देने आ जाएं।

पर कुंवर नारायण के दाह संस्कार में तो पर्याप्त संख्या में लेखक पत्रकार संस्कृतिकर्मी व छात्र मौजूद थे। तब ऐसे अपविरुद फैलाने का क्या प्रयोजन? हो सकता है कुछ राज्यों में, कुछ भाषाओं के लेखकों को उनके लोगों का ज्यादा सम्मान हासिल हो और उनकी अंत्येष्टियों में ज्यादा भीड़ उमड़ती हो पर जब हिंदी में जीते जी ही दूसरों का उपहास करने की प्रवृत्ति चल पड़ी हो और लोग 'ये आग लगाएंगे, वे हवा देंगे' की तर्ज पर परम आनंद का अनुभव करते हों।

उनका जेहन अपनी जमीन के रंगों से रंगा था : असद जैदी

कुंवर नारायण अंततः दुनिया से चले गए। कुछ बरस पहले उनकी आँखें जाती रहीं, फिर कानों ने जवाब दे दिया। पिछली मुलाकातों में हाथों से छूकर ही तसल्ली पाते थे। फिर मस्तिष्काघात हुआ जिससे संभल नहीं पाये। उनका जीवन उनके हाथ में न रहा। करीब पाँच महीने बेहोशी में रहे और उसी हाल में रवाना हुए। उनकी गिरती तंदुरुस्ती और लम्बी खिंचती मौत में एक तरह की नाइन्साफी नजर आती है। एक सज्जन और फरिश्ता-सिफत आदमी, जिसने अपनी तर्ज. से जीवन जिया, जिसे उसके लहजे की सफाई, संजीदगी, नर्मरवी और मुहब्बत के लिए जाना गया, एक बेहतर मौत का हकदार था।

एक लेखक के रूप में उनकी शोहरत और इज्जत में कमी न थी। वह बड़े लेखक, बड़े आदमी और हिन्दुस्तानी तहजीब के प्रतीक पुरुष की तरह जाने गए। वक़्त वक़्त पर उन्हें साहित्य संसार के सम्मान और पुरस्कार हासिल हुए जिनमें साहित्य अकादेमी और ज्ञानपीठ पुरस्कार और पद्मभूषण उपाधि शामिल हैं। पर मुझे वह हमेशा बेनियाज ही नजर आए। सामान्य अर्थ में वह महत्वाकांक्षी न थे। उत्सवधर्मिता और बड़बोलापन उनके स्वभाव में न था। वह अहले-जौक इन्सान थे—एक गुणग्राहक पाठक, श्रोता, दर्शक, भावक और सहानुभूतिशील प्रेक्षक। वह ये सब पहले थे, लेखक और रचयिता बाद में। संस्कृति को कैसे जिया और बरता जाता है, उनका जीवन इसकी मिसाल है। वह वैश्विक संस्कृति और विचार की दुनिया के नागरिक थे। उनका जेहन अपनी तहजीब और अपनी जमीन के रंगों से रंगा था, लेकिन उनका स्वर एक विश्व नागरिक का स्वर था। सादगी में उनकी आत्मा बसती थी। भावों की विपुलता और शब्द वैभव से परहेज रखते थे। उनके पास एक कबीरी करघा था। प्रकारान्तर से उनका रचनात्मक वस्त्र इसी मननशील करघे पर साहित्य, कला, संगीत, सिनेमा, आधुनिक विचार, राजनीति, अध्यात्म, भाषा, इतिहास और पुरातत्व के संधान से प्राप्त रेशों से ही बुना गया है।

मुक्तिबोध ने एक जमाने में युवा कुंवर नारायण पर अपने समीक्षात्माक लेख में उन्हें 'अंतरात्मा की पीड़ित विवेक-चेतना और जीवन की आलोचना' का कवि कहा था। मुक्तिबोध के इस आकलन से जो नैतिक घेरा बनता है, कुंवर नारायण हमेशा उसी के अन्दर रहे। वह मूलतः एक नागरिक कवि रहे—नैतिक और सामजिक रूप से अत्यन्त सावधान और प्रतिबद्ध कवि। उनकी कविता में कला उतनी ही है जितनी कि समा जाए, कि उसी में उसकी मनुष्यता है। अपने पुराने सखा रघुवीर सहाय की तरह वह भी 'अधिक कला' के शैदाई न थे। सहाय जी की मृत्यु (1990) के बाद समकालीन हिन्दी कविता का अव्वलीन नागरिक-कवि उन्हीं को माना गया।

अपने उदारवादी मानववाद को उन्होंने हमेशा यथास्थितिवाद के बरक्स रखकर देखा। वह विकल्प को संभव और प्रतिरोध को अनिवार्य मानते थे। गंभीर राजनीतिक और सांस्कृतिक सवालों पर साबितकदमी से अपनी बात रखते थे। वह कभी संतुलन के बहाने पीड़ित और उत्पीड़क, सत्ता और प्रतिरोध, यथास्थिति और विकल्प, सेकुलर और गैर-सेकुलर के दरम्यान नैतिक बराबरी नहीं खोजते थे। उनकी नजर विकल्प के जोखिम पर भी रहती; वह उसका आदर्शीकरण नहीं करते थे। फिर भी उन्होंने विपक्ष से निराश होकर यथास्थिति में रिलैप्स नहीं किया।

पुरानी बात है। एक रोज मुझसे बोले—असद, तुम हमेशा असहमत और रूठे हुए क्यों लगते हो? मैंने कहा—कुंवर जी, कुछ तो मेरी शक्ल ही ऐसी है! फिर कुछ यह असहमति नामक जो गुड़िया हमारे दरम्यान रूठी बैठी रहती है, उसे मुस्कुराना नहीं आता! कुंवर जी मुस्कुराए, बोले—दरअसल, हम लोग अपनी सहमतियों पर खामोश रहते हैं, और असहमतियों पर वाचाल, जबकि हम सहमत ज्यादा हैं, असहमत बहुत कम। तुमने गुड़िया का रूपक अच्छा बनाया। असहमति की गुड़िया मैं भी अपने पास रखता हूं। लेकिन अगर तुम गौर करो तो हम लोगों की नाराज़ियां और खामोशियां भी सगी बहनें ही निकलेंगी। इस बात पर तो राजी हो न? कौन भला राजी न होता!

फिर कहा—जरा गालिब का वो शेर सुनाना, अगर तुम्हें याद होङ्क जिसकी रदीफ दिल में है। मैंने सुना दिया : ह्लदेखना तकरीर की लज्जत कि जो उसने कहा/मैंने ये जाना कि ये भी मेरे दिल में है।ह्व कुछ रुककर बोले—उसने ये जाना कि ये बात उसके दिल में पहले ऐसे न थी, थी पर असहमति के रूप में जरूर रही होगी। ह्लतकरीर की लज्जतह्व यह है कि उसने असहमति को सहमति में बदल दिया। गालिब का काव्य असहमति का ही तो काव्य है।

मेरे ऐसे करमफरमा अब चले गए। यह मेरी व्यक्तिगत क्षति है।

9 दिसम्बर, पुण्यतिथि पर विशेष

कैलाश गौतम के तालमखाने जैसे गीत

अवधी और खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि कैलाश गौतम ने भारत के बदलते गाँव और शहरीकरण के तिलस्म को तीखे व्यंग्य, लोकबोली की मिठास, तीज-त्योहारों की हंसी- खुशी, रिश्तों की खटास, देसज मुहावरेदारी के साथ रेखांकित करते हुए 'गांव गया था गांव से भागा', 'अमवसा क मेला', 'गान्ही जी', 'कचहरी न जाना', 'बाबू आन्हर माई आन्हर', 'पप्पू की दुलहिन', 'रामलाल का फगुआ', 'बड़की भौजी', 'जोड़ा ताल', 'सिर पर आग', 'कविता लौट पड़ी', 'बिना कान का आदमी', 'जै-जै सियाराम', 'तम्बुओं का शहर' जैसे अनेकानेक कालजयी सृजन किए हैं। 8 जनवरी 1944 को बनारस के डिग्घी गांव (अब चन्दौली) में जन्मे कैलाश गौतम को आकाशवाणी इलाहाबाद से सेवानिवृत्त होने के बाद सरकार ने हिन्दुस्तानी एकेडमी का अध्यक्ष मनोनीत किया। ऋतुराज सम्मान, यश भारती सम्मान से समादृत कैलाश गौतम का 9 दिसम्बर 2006 को निधन हो गया। 'शब्दांचल' में प्रस्तुत हैं के रचना-कर्म पर वरिष्ठ साहित्यकार नरेश मेहता, दूधनाथ सिंह, प्रियंकर और उमानाथ सिंह के अभिमत के साथ उनकी छह लोकप्रिय कविताएं, उनकी इन पंक्तियों के साथ- 'मन का वृन्दावन होना इतना आसान नहीं। वृन्दावन तो वृन्दावन है, घर दालान नहीं।'

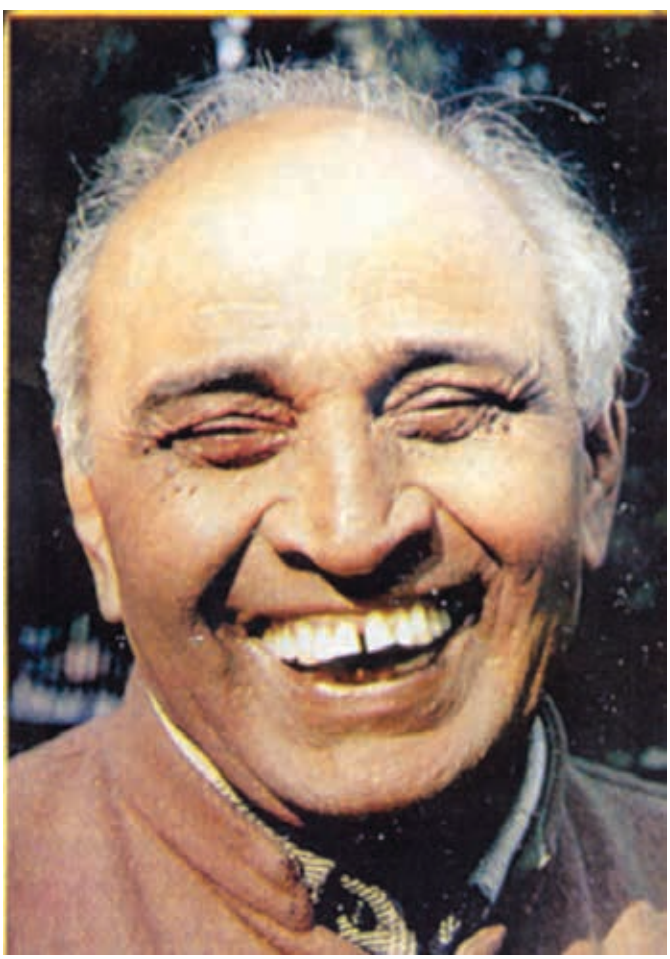

वरिष्ठ साहित्यकार नरेश मेहता के शब्दों में- 'कैलाश गौतम के ताल मखाने जैसे गीत हमारे अंतर में ग्राम्यता के घर आँगन वाले प्रत्यांकनों को मूर्त करते हैं। वह जिस सहज भाव और भाषा के साथ सारी परंपरा को शब्दों में, चित्रों में, बिम्बों में परोस देते हैं, वह कितना उदात्त है। क्या नहीं है इन गीतों में? सारा भारतीय लोकजीवन कंधे पर गीली धोती उठाए, चना-चबेना चबाते हुए अपनी विश्वास की धरती पर चलते दिखता है। भले ही आज का वर्णसंकर इतिहास इन्हें कितना ही गर्हित समझे परन्तु हमारी भारतीय संस्कृति का मूल हमारा यह लोक जीवन ही है। कैलाश गौतम जैसे वास्तविक कवि अपनी संस्कृति से एक क्षण को भी पृथक नहीं होते। मैं इन लोकतत्वी रचनाओं के प्रति विनम्र होना चाहूँगा। कविता जब तक अपनी ग्राम्यता, संस्कृति के साथ ऐसी तन्मय नहीं होती, तब तक काव्य के दूसरे प्रकार के सारे आन्दोलनों का कोई अर्थ नहीं। भले ही इन आन्दोलनों की घेरेबन्दी हो परन्तु ये अपनी परम्परा से कटे हुए आन्दोलन हैं। वर्तमान भले ही घेरेबन्दी का हो सकता है, परन्तु भविष्य तो संस्कृति और लोकपथ पर रहकर जीवन के साथ चलती, बतियाती और गाती कविताओं का ही है। जयदेव, विद्यापति, निराला के बाद ये कविताएं ऐसी रचनात्मक बयार हैं, जिनका स्वागत किया ही जाना चाहिए।'

ख्यात कथाकार दूधनाथ सिंह लिखते हैं - 'कैलाश गौतम कोई दुधमुहे कवि नहीं हैं कि उनका परिचय देना जरूरी हो, लेकिन जो कवि फन और फैशन से बाहर खड़ा हो, उससे लोग परिचित होना भी जरूरी नहीं समझते क्योंकि अक्सर लोगों का ध्यान तो सौंदर्यशास्त्र की बनी बनायी श्रेणियाँ खींचती

हैं। कैलाश गौतम उस खांचे में नहीं अंटते। वह खांचा उनके काम का नहीं है या वे उस खांचे के काम के नहीं। इसका सीधा मतलब है कि यह कवि अपनी कविताओं के लिये एक अलग और और विशिष्ट सौंदर्यशास्त्र की मांग करता है।'

उमाशंकर सिंह लिखते हैं- 'हिंदी की जातीय जमात से अलग-थलग माने जाने वाले कवि कैलाश गौतम की कविताएं स्वतंत्र हिन्दुस्तान की अलग कहानी कहती हैं। जी हाँ, वही कहानी, जिसको श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' में कहा है। कैलाश गौतम का 'लोक' आज भी आलोचकों की नजर से ओझल है। आलोचक भले न देख सकें, पाठक उनकी कविताओं का लौकिक यथार्थ बखूबी देख लेता है।'

प्रियंकर लिखते हैं- 'कैलाश गौतम विरल प्रजाति के गीतकार थे। लोकसंवेदना से गहरी संपृक्ति उनकी कविताओं और गीतों को विशिष्टता से भर देती है। आंचलिक बिम्बों से परिपुष्ट लोकराग की एक अनूठी बयार बहती है उनके गीतों में। पारम्परिक समाज और मानवीय संबंधों के टूटने के एक प्रच्छन्न करुण-संगीत, एक दबी कराह के साथ नॉस्टैल्जिया की एक अंतधार्रा उनकी कविता में हमेशा विद्यमान रहती है। यहां तक कि बाहरी तौर पर हास्य-व्यंग्य का बाना धरने वाली कविताओं में भी पीड़ा की यह रेखा स्पष्ट लक्षित की जा सकती है। वे खुद भी वैसे ही थे, आत्मीयता से भरे-पूरे, हँसमुख और हरदिल अजीज।

तीन चौथाई आन्हर

बाबू आन्हर माई आन्हर, हमै छोड़ सब भाई आन्हर।
के-के, के-के दिया देखाई, बिजुली अस भउजाई आन्हर॥

हमरे घर क हाल न पूछा, भूत प्रेत बैताल न पूछा
जब से नेंय दियाइल तब से निकल रहल कंकाल न पूछा
ओझा सोखा मुल्ला पीर, केकर-केकर देईं नजीर
जंतर-मन्तर टोना-टोटका पूजा-पाठ-दवाई आन्हर॥

जे आवै ते लूटै खाय, परचल घोड़ भुसवले जाय
हँस-हँस बोलै ठोंकै पीठ, सौ-सौ पाठ पढ़वले जाय
केहू ओनइस केहू बीस, जोरै हाथ निपोरै खीस
रोज-रोज मुर्गा तोरत हौ, कइसे कहीं बिलाई आन्हर॥

इनकर किरिया उनकर बात, सोच-सोच के काटीं रात
के केतनी पानी में हउवै, मालुम हौ सब कर औकात
फूटल जइसे करम हमार, ओरहन सुन-सुन दुखै कपार
आपन तेल निहारत नाँही, दिया कहे पुरवाई आन्हर॥

पूत जनमलैं लोलक लईया, बोवैं धान पछोरैं पइया
घर-घर चूल्हा अलग करवलीं, कुल गुनवां क पाखर अइया
कुछ अइसन कुन्डली बनल हौ, रस्ता रस्ता कुआँ खनल हौ
नइहर गइल रहल मेहरारू ली आइल महंगाई आन्हर॥
हाहाकार हौ चारों ओरी, पूरुब आग त पच्छिव चोरी
ओकरे कैसे कवर घोटाई, जेकर अहरा कुकुर अगोरी
दूध क माछी नाक क बार, दूनो देखली ए सरकार
एक आँख क कवन निहोरा, जहाँ तीन चौथाई आन्हर॥

अमौसा क मेला

भक्ती के रंग में रँगल गाँव देखा,
धरम में, करम में, सनल गाँव देखा,
अगल में, बगल में सगल गाँव देखा,
अमौसा नहाए चलल गाँव देखा,
एहू हाथे झोरा, ओहू हाथे झोरा,
कान्ही पर बोरी, कपारे पर बोरा,
कमरी में केहू, कथरी में केहू,
रजाई में केहू, दुलाई में केहू,
आजी रँगावत रही गोड़ देखऽ,
हँसत हँउवे बब्बा, तनी जोड़ देखऽ,
घुँघटवे से पूछे पतोहिया की अइया,
गठरिया में अब का रखाई बतइहा,
एहर हउवे लुग्गा, ओहर हउवे पूड़ी,
रामायण का लग्गे ह मँडुआ के ढूँढ़ी,
चाउर आ चिउरा किनारे के ओरी,
नयका चपलवा अचारे के ओरी,
अमौसा क मेला, अमौसा का मेला।

मचल हउवे हल्ला, चढ़ावा उतारा,
खचाखच भरल रेलगाड़ी निहारा,
एहर गुर्री-गुर्रा, ओहर लुर्री-लुर्रा,
आ बीचे में हउव शराफत से बोला,
चपायल ह केहु, दबायल ह केहू,
घंटन से उपर टँगायल ह केहू,
केहू हक्का-बक्का, केहू लाल-पीयर,
केहू फनफनात हउवे कीरा के नीयर।
बप्पा रे बप्पा, आ दइया रे दइया,
तनी हम्मे आगे बढ़े देता भइया।
मगर केहू दर से टसकले ना टसके,
टसकले ना टसके, मसकले ना मसके,
छिड़ल ह हिताई-मिताई के चरचा,
पढ़ाई-लिखाई-कमाई के चरचा।
दरोगा के बदली करावत हौ केहू,
लग्गी से पानी पियावत हौ केहू।
अमौसा क मेला, अमौसा क मेला।

गुलब्बन के दुलहिन चलै धीरे धीरे
भरल नाव जइसे नदी तीरे तीरे।
सजल देहि जइसे हो गवने के डोली,
हँसी हौ बताशा शहद हउवे बोली।
देखैली ठोकर बचावेली धक्का,
मने मन छोहारा, मने मन मुनक्का।
फुटेहरा नियर मुस्किया मुस्किया के
निहारे ली मेला चिहा के चिहा के।
सबै देवी देवता मनावत चलेली,
नरियर प नरियर चढ़ावत चलेली।
किनारे से देखैं, इशारे से बोलैं
कहीं गाँठ जोड़ें कहीं गाँठ खोलैं।
बड़े मन से मंदिर में दर्शन करेली
आ दुधै से शिवजी के अरघा भरेली।
चढ़ावें चढ़ावा आ कोठर शिवाला
छूवल चाहें पिंडी लटक नाहीं जाला।
अमौसा के मेला, अमौसा के मेला।

एही में चंपा-चमेली भेंटइलीं,
बचपन के दूनो सहेली भेंटइलीं,
ई आपन सुनावें, ऊ आपन सुनावें,
दुनो आपन गहना-गदेला गिनावें,
असो का बनवलू, असो का गढ़वलू,
तू जीजा क फोटो ना अबतक पठवलू,

ना ई उन्हें रोकैं, ना ऊ इन्हैं टोकैं,
दुनो अपने दुलहा के तारीफ झोंकैं,
हमैं अपना सासू के पुतरी तूँ जाना,
हमैं ससुरजी के पगड़ी तूँ जाना,
शहरियो में पक्की, देहतियो में पक्की,
चलत हउवे टेंपू, चलत हउवे चक्की,
मने मन जरै, आ गड़ै लगली दुन्नों,
भया तू तू मैं मैं, लड़ै लगली दुन्नों,
साधू छुड़ावैं, सिपाही छुड़ावैं,
हलवाई जइसे कड़ाही छुड़ावै,
अमौसा क मेला, अमौसा का मेला।

करौता के माई के झोरा हेराइल,
बुद्धू के बड़का कटोरा हेराइल,
टिकुलिया के माई टिकुलिया के जोहै,
बिजुरिया के माई बिजुरिया के जोहै,
मचल हउवै हल्ला त सगरो ढुँढ़ाई,
चबैला के बाबू चबैला के माई,
गुलबिया सभत्तर निहारत चलेले,
मुरहुआ-मुरहुआ पुकारत चलेले,
छोटकी बिटउआ के मारत चलेले,
बिटिइउवे प गुस्सा उतारत चलेले,
गोबरधन के सरहज किनारे भेंटइलीं,
गोबरधन का संगे पँउड़ के नहइलीं,
घरे चलता पाहुन, दही-गुड़ खिआइब,
भतीजा भयल हौ भतीजा देखाइब,
उहैं फेंक गठरी परइले गोबरधन,
ना फिर-फिर देखइलें, धरइलें गोबरधन,
अमौसा क मेला, अमौसा का मेला।

केहू शाल, स्वेटर, दुशाला मोलावे,
केहू बस अटैची के ताला मोलावे,
केहू चायदानी पियाला मोलावे,
सुखौरा के केहू मसाला मोलावे,
नुमाइश में जा के बदल गइलीं भउजी,
भइया से आगे निकल गइलीं भउजी,
आयल हिंडोला मचल गइलीं भउजी,
देखते डरामा उछल गइलीं भउजी,
भइया बेचारू जोड़त हउवें खरचा,
भुलइले ना भूले पकौड़ी के मिरचा,
बिहाने कचहरी, कचहरी के चिंता,
बहिनिया के गौना-मशहरी के चिंता,
फटल हउवे कुरता टूटल हउवे जूता,
खलीता में खाली किराया के बूता,
तबो पीछे-पीछे चलल जात हउवें,
कटोरी में सुरती मलत जात हउवें,
अमौसा का मेला, अमौसा का मेला।

गांव गया था गांव से भागा

गांव गया था गांव से भागा।

रामराज का हाल देखकर
पंचायत की चाल देखकर
आंगन में दीवाल देखकर
सिर पर आती डाल देखकर
नदी का पानी लाल देखकर
और आंख में बाल देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

सरकारी स्कीम देखकर
बालू में से क्रीम देखकर
देह बनाती टीम देखकर
हवा में उड़ता भीम देखकर
सौ-सौ नीम हकीम देखकर
गिरवी राम रहीम देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

जला हुआ खलिहान देखकर
नेता का दालान देखकर
मुस्काता शैतान देखकर
घिघियाता इंसान देखकर
कहीं नहीं ईमान देखकर
बोझ हुआ मेहमान देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

नये धनी का रंग देखकर
रंग हुआ बदरंग देखकर
बातचीत का ढंग देखकर
कुएं-कुएं में भंग देखकर
झूठी शान उमंग देखकर
पुलिस चोर के संग देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

बिना टिकट बारात देखकर
टाट देखकर भात देखकर
वही ढाक के पात देखकर
पोखर में नवजात देखकर
पड़ी पेट पर लात देखकर
मैं अपनी औकात देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

नये नये हथियार देखकर
लहू-लहू त्यौहार देखकर
झूठ की जै-जैकार देखकर
सच पर पड़ती मार देखकर
भगतिन का श्रृंगार देखकर
गिरी व्यास की लार देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

मुठ्ठी में कानून देखकर
किचकिच दोनों जून देखकर
सिर पर चढ़ा जुनून देखकर
गंजे को नाखून देखकर
उजबक अफलातून देखकर
पंडित का सैलून देखकर
गांव गया था गांव से भागा।

बड़की भौजी

जब देखो तब बड़की भौजी हँसती रहती हैं।
हँसती रहती हैं, कामों में फँसती रहती हैं।
झरझर झरझर हँसी होंठ पर झरती रहती है,
घर का खाली कोना भौजी भरती रहती हैं॥

डोरा देह, कटोरा आँखें जिधर निकलती हैं,
बड़की भौजी की ही घंटों चर्चा चलती है।
खुद से बड़ी उमर के आगे झुककर चलती हैं
आधी रात गए तक भौजी घर में खटती हैं।।

कभी न करती नखरा-तिल्ला सादा रहती हैं
जैसे बहती नाव नदी में वैसे बहती हैं।
सबका मन रखती हैं घर में, सबको जीती हैं
गम खाती हैं बड़की भौजी गुस्सा पीती हैं॥

चौका-चूल्हा, खेत-कियारी, सानी-पानी में
आगे-आगे रहती हैं कल की अगवानी में।
पीढ़ा देतीं, पानी देतीं, थाली देती हैं,
निकल गई आगे से बिल्ली, गाली देती हैं॥

भौजी दोनों हाथ दौड़कर काम पकड़ती हैं
दूध पकड़ती दवा पकड़ती दाम पकड़ती हैं।
इधर भागती उधर भागती नाचा करती हैं
बड़की भौजी सबका चेहरा बांचा करती हैं॥

फुर्सत में जब रहती हैं, खुलकर बतियाती हैं

अदरक वाली चाय पिलाती, पान खिलाती हैं।
भइया बदल गये पर भौजी बदली नहीं कभी
सास के आगे उल्टे पल्ला निकली नहीं कभी॥

हारी नहीं कभी मौसम से सटकर चलने में
गीत बदलने में हैं आगे, राग बदलने में।
मुंह पर छींटा मार-मार कर ननद जगाती है
कौवा को ननदोई कहकर हँसी उड़ाती हैं॥

बुद्धू को बेमशरफ कहती भौजी फागुन में
छोटी को कहती हैं गरी-चिरौंजी फागुन में।
छठे-छमासे गंगा जातीं, पुण्य कमाती हैं,
इनकी-उनकी सबकी डुबकी स्वयं लगाती हैं॥

आँगन की तुलसी को भौजी दूध चढ़ाती हैं
घर में कोई सौत न आये, यही मनाती हैं।
भइया की बातों में भौजी इतना फूल गयीं
दाल परसकर बैठी रोटी देना भूल गयी॥

गान्ही जी

सिर फूटत हौ, गला कटत हौ, लहू बहत हौ, गान्ही जी,
देस बंटत हौ, जइसे हरदी धान बंटत हौ, गान्ही जी,
बेर बिसवतै ररूवा चिरई रोज ररत हौ, गान्ही जी,
तोहरे घर क' रामै मालिक सबै कहत हौ, गान्ही जी।

हिंसा राहजनी हौ बापू, हौ गुंडई, डकैती, हउवै
देसी खाली बम बनूक हौ, कपड़ा घड़ी बिलैती, हउवै
छुआछूत हौ, ऊंच नीच हौ, जात-पांत पंचइती हउवै
भाय भतीया, भूल भुलइया, भाषण भीड़ भंड़इती हउवै
का बतलाई कहै सुनै मे सरम लगत हौ, गान्ही जी
केहुक नांही चित्त ठेकाने बरम लगत हौ, गान्ही जी
अइसन तारू चटकल अबकी गरम लगत हौ, गान्ही जी
गाभिन हो कि ठांठ मरकहीं भरम लगत हौ, गान्ही जी।

जे अललै बेइमान इहां ऊ डकरै किरिया खाला
लम्बा टीका, मधुरी बानी, पंच बनावल जाला
चाम सोहारी, काम सरौता, पेटैपेट घोटाला
एक्को करम न छूटल लेकिन, चउचक कंठी माला
नोना लगत भीत हौ सगरों गिरत परत हौ गान्ही जी
हाड़ परल हौ अंगनै अंगना, मार टरत हौ गान्ही जी
झगरा क' जर अनखुन खोजै जहां लहत हौ गान्ही जी
खसम मार के धूम धाम से गया करत हौ गान्ही जी।

उहै अमीरी उहै गरीबी उहै जमाना अब्बौ हौ
कब्बौ गयल न जाई जड़ से रोग पुराना अब्बौ हौ
दूसर के कब्जा में आपन पानी दाना अब्बौ हौ
जहां खजाना रहल हमेसा उहै खजाना अब्बौ हौ
कथा कीर्तन बाहर, भीतर जुआ चलत हौ, गान्ही जी
माल गलत हौ दुई नंबर क, दाल गलत हौ, गान्ही जी
चाल गलत, चउपाल गलत, हर फाल गलत हौ, गान्ही जी
ताल गलत, हड़ताल गलत, पड़ताल गलत हौ, गान्ही जी।

घूस पैरवी जोर सिफारिश झूठ नकल मक्कारी वाले
देखतै देखत चार दिन में भइलैं महल अटारी वाले
इनके आगे भकुआ जइसे फरसा अउर कुदारी वाले
देहलैं खून पसीना देहलैं तब्बौ बहिन मतारी वाले
तोहरै नाव बिकत हो सगरो मांस बिकत हौ गान्ही जी
ताली पीट रहल हौ दुनिया खूब हंसत हौ गान्ही जी
केहु कान भरत हौ केहू मूंग दरत हौ गान्ही जी
कहई के हौ सोर धोवाइल पाप फरत हौ गान्ही जी।

जनता बदे जयंती बाबू नेता बदे निसाना हउवै
पिछला साल हवाला वाला अगिला साल बहाना हउवै
आजादी के माने खाली राजघाट तक जाना हउवै
साल भरे में एक बेर बस रघुपति राघव गाना हउवै
अइसन चढ़ल भवानी सीरे ना उतरत हौ गान्ही जी
आग लगत हौ, धुवां उठत हौ, नाक बजत हौ गान्ही जी
करिया अच्छर भंइस बराबर बेद लिखत हौ गान्ही जी
एक समय क' बागड़ बिल्ला आज भगत हौ गान्ही जी।

कचहरी न जाना

भले डांट घर में तू बीबी की खाना,
भले जैसे-तैसे गिरस्ती चलाना,
भले जा के जंगल में धूनी रमाना,
मगर मेरे बेटे कचहरी न जाना।

कचहरी हमारी तुम्हारी नहीं है,
कहीं से कोई रिश्तेदारी नहीं है,
अहलमद से भी कोरी यारी नहीं है,
तिवारी था, पहले तिवारी नहीं है,

कचहरी की महिमा निराली है बेटे,
कचहरी वकीलों की थाली है बेटे,
पुलिस के लिए छोटी साली है बेटे,
यहाँ पैरवी अब दलाली है बेटे,

कचहरी ही गुंडों की खेती है बेटे,
यही जिन्दगी उनको देती है बेटे,
खुलेआम कातिल यहाँ घूमते हैं,
सिपाही दरोगा चरण चूमते हैं,

कचहरी में सच की बड़ी दुर्दशा है,
भला आदमी किस तरह से फंसा है,
यहाँ झूठ की ही कमाई है बेटे,
यहाँ झूठ का रेट हाई है बेटे,

कचहरी का मारा कचहरी में भागे,
कचहरी में सोये, कचहरी में जागे,
मर जी रहा है गवाही में ऐसे,
है तांबे का हंडा सुराही में जैसे,

लगाते-बुझाते सिखाते मिलेंगे,
हथेली पे सरसों उगाते मिलेंगे,
कचहरी तो बेवा का तन देखती है,
कहाँ से खुलेगा, बटन देखती है,

कचहरी शरीफों की खातिर नहीं है,
उसी की कसम लो, जो हाज़िर नहीं है,
है बासी मुहं घर से बुलाती कचहरी,
बुलाकर के दिन भर रुलाती कचहरी,

मुकदमे की फाइल दबाती कचहरी,
हमेशा नया गुल खिलाती कचहरी,
कचहरी का पानी जहर से भरा है,
कचहरी के नल पर मुवक्किल मरा है,

मुकदमा बहुत पैसा खाता है बेटे,
मेरे जैसा कैसे निभाता है बेटे,
दलालों ने घेरा सुझाया-बुझाया,
वकीलों ने हाकिम से सटकर दिखाया,

धनुष हो गया हूँ मैं टूटा नहीं हूँ,
मैं मुट्ठी हूँ, केवल अंगूठा नहीं हूँ,
नहीं कर सका मैं मुकदमे का सौदा,
जहाँ था करौदा, वहीं है करौदा,

कचहरी का पानी कचहरी का दाना,
तुम्हे लग न जाये, तू बचना बचाना,
भले और कोई मुसीबत बुलाना,
कचहरी की नौबत कभी घर न लाना,

कभी भूल कर भी न आँखें उठाना,
न आँखें उठाना, न गर्दन फंसाना,
जहाँ पांडवों को नरक है कचहरी,
वहीं कौरवों को सरग है कचहरी।
कचहरी न जाना, कचहरी न जाना।

01 दिसम्बर, जयंती
ठाकुर प्रसाद सिंह

पात झरे, फिर-फिर होंगे हरे।

साखू की डाल पर उदासे मन,
उन्मन का क्या होगा
पात-पात पर अंकित चुम्बन,
चुम्बन का क्या होगा
मन-मन पर डाल दिए बन्धन,
बन्धन का क्या होगा
पात झरे, गलियों-गलियों बिखरे।

कोयलें उदास मगर फिर-फिर वे गाएँगी,
नए-नए चिन्हों से राहें भर जाएंगी,
खुलने दो कलियों की ठिठुरी ये मुट्ठियाँ,
माथे पर नई-नई सुबहें मुस्काएँगी,
गगन-नयन फिर-फिर होंगे भरे।

3 दिसम्बर, जन्मदिन
चंद्रसेन विराट

लौट रहा हूँ मैं अतीत से
देखूँ प्रथम तुम्हारे तेवर
मेरे समय! कहो कैसे हो?

शोर-शराबा चीख-पुकारे सड़कें भीर दुकानें होटल
सब सामान बहुत है लेकिन गायक दर्द नहीं है केवल
लौट रहा हूँ मैं अगेय से
सोचा तुमसे मिलता जाऊँ
मेरे गीत! कहो कैसे हो?

भवन और भवनों के जंगल चढ़ते और उतरते जीने
यहाँ आदमी कहाँ मिलेगा सिर्फ मशीनें और मशीनें
लौट रहा हूँ मैं यथार्थ से
मन हो आया तुम्हे भेंट लूँ
मेरे स्वप्न! कहो कैसे हो?

नस्ल मनुज की चली मिटाती यह लावे की
एक नदी है
युद्धों की आतंक न पूछो खबरदार बीसवीं सदी है
लौट रहा हूँ मैं विदेश से
सबसे पहले कुशल पूँछ लूँ
मेरे देश! कहो कैसे हो?

सह सभ्यता नुमाइश जैसे लोग नहीं है यसर्फ मुखौटे
ठीक मनुष्य नहीं है कोई कद से ऊँचे मन से छोटे
लौट रहा हूँ मैं जंगल से
सोचा तुम्हें देखता जाऊँ
मेरे मनुज! कहो कैसे हो?

जीवन की इन रफ़्तारों को अब भी बाँधे कच्चा धागा
सूबह गया घर शाम न लौटे उससे बढ़कर कौन अभागा
लौट रहा हूँ मैं बिछोह से
पहले तुम्हें बाँह में भर लूँ
मेरे प्यार! कहो कैसे हो?

राजा अवस्थी

मुकुट बिहारी सच कहते थे
यह फोड़ा नासूरी है।
चीर - फाड़ जो हुई आजतक
पूरी तरह अधूरी है।

कितने प्रगतिशील, जनवादी
नारे हमने लिख लादे ;
धरती से, जन से कर डाले हैं
कैसे - कैसे वादे ;
कवि तेरी कविता की जन से
कितनी अद्भुत दूरी है।

तंत्र विधाता लगा रहा है
हर मुँह पर भय का ताला ;
कर्जदार धरती-मालिक का
लहक रहा फूटा छाला ;
मनोदशा सुखुवा की भी अब
आत्महंतिनी पूरी है।

कल तक मुखर विरोध किया था
जैसे - जैसे कामों का ;
आज गिनाने लगे फायदा
जेब जलाते दामों का ;

अद्भुत है, जलते घर को भी
कहा गया, सिंदूरी है।

तुम चुप, हम चुप सारे चुप हैं
मंच मुखर हैं भाटों के ;
कोई राजा आए - जाए
ये गायक सब घाटों के ;
यश गायन में सिद्ध, साधना
रंग बदल की पूरी है।

(संपर्क - 7622207998)

हरीलाल मिलन

पधारो गांव
मंत्री जी
तुम्हें माटी बुलाती है।

प्रगति, अवलोकती नभ से
दिशाएं गांव-गलियों की
नजर आती नहीं शायद
व्यथाएं फूल-कलियों की

अमीरी
सूद लेती है
गरीबी लड़खड़ाती है।

'थकी पगली' क्षुधा के घर
सिसकती और रोती है।
कभी खच्चर, कभी खुद पर
समय की ईंट ढोती है।

उदर की आग
भट्ठे पर
मुनीमों को मनाती है।

जमीं को सूंघते 'छोटे'
बड़े गतिमान 'गाड़ी'
बगावत क्यों करे कोई
कि जिन्दा है दिहाड़ी से

न जाने
किस सदी से ये
विवशता सिर झुकाती है।

नहीं मालूम 'खेतों' को
'वही जीवन बचाते हैं'
चीर कर वक्ष अपना ही
नई फसलें उगाते हैं

विवादों में
हुए टुकड़े
उर्वरा थरथराती है।

गुटों में स्वार्थ सबलों का
जमाने से नहीं डरता
लुटी 'कीरति' मिटी 'ममता'
सही निर्णय नहीं करता।

समय बेशर्म
खण्डहर का
मनुजता छटपटाती है।

निरीहों की छुपी दुनिया
सजा ही प्रेम की हद है
यहां के दर्द से क्यों दूर
सचिवालय व संसद है

भंवर को
पार करने में
नाव क्यों डूब जाती है।

पधारे गांव
मंत्री जी
तुम्हें माटी बुलाती है।

(संपर्क - 9935299939)

वेदप्रकाश शर्मा वेद

उठो भी अब
सांझ घिर आई
दिया बाती करें।

जो गया उस पार
लौटेगा नहीं
इस नदी की
यह अनोखी शर्त है
शर्त आगे
यह स्वयं असमर्थ है
चलो भी अब
राह पथराई
विदा पाती करें।

मान भी लो
सत्य का यह व्याकरण
नियम हैं इसमें
नहीं संवेदना
है असंभव
दुर्ग इसका भेदना
झुको भी अब
आस मुरझाई
कड़ी छाती करें

हम जहां बैठे
सन्धि का देश है वह
और अपना पक्ष
टूटा साज है

दूर कल से
आ रही आवाज है

सुनो भी अब
भोर घबराई
उसे थाती करें।

30 दिसंबर, पुण्यतिथि
दुष्यंत कुमार

एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है,
आज शायर ये तमाशा देख कर हैरान है।

खास सड़कें बंद हैं तब से मरम्मत के लिए,
यह हमारे वक्त की सबसे सही पहचान है।

एक बूढा आदमी है मुल्क में या यों कहो,
इस अँधेरी कोठारी में एक रौशनदान है।

मस्लहत-आमेज होते हैं सियासत के कदम,
तू न समझेगा सियासत, तू अभी नादान है।

इस कदर पाबंदी-ए-मजहब की सदके आपके
जब से आजादी मिली है, मुल्क में रमजान है।

कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है।

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ,
हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।

5 दिसम्बर, जयंती
जोश मलीहाबादी

कदम इंसान का राह-ए-दहर में थर्रा ही जाता है।
चले कितना ही कोई बच के ठोकर खा ही जाता है।

नजर हो ख़्वाह कितनी ही हकाइक-आश्ना फिर भी
हुजूम-ए-कशमकश में आदमी घबरा ही जाता है।

खिलाफ-ए-मसलेहत मैं भी समझता हूँ मगर नासेह
वो आते हैं तो चेहरे पर तहय्युर आ ही जाता है।

हवाएं जोर कितना ही लगाएँ आँधियाँ बनकर
मगर जो घिर के आता है वो बादल छा ही जाता है।

शिकायत क्यों इसे कहते हो ये फि तरत है इंसान की
मुसीबत में खयाल-ए-ऐश-ए-रफ़्ता आ ही जाता है।

समझती हैं म'अल-ए-गुल मगर क्या जोर-ए-
फि तरत है
सहर होते ही कलियों को तबस्सुम आ ही जाता है।

24 दिसम्बर, जयंती
कतील शिफाई

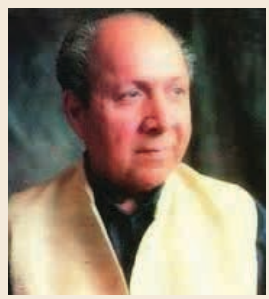

जब भी चाहें एक नई सूरत बना लेते हैं लोग।
एक चेहरे पर कई चेहरे सजा लेते हैं लोग।

मिल भी लेते हैं गले से अपने मतलब के लिए
आ पड़े मुश्किल तो नजरें भी चुरा लेते
हैं लोग।

है बजा उनकी शिकायत लेकिन इसका
क्या इलाज
बिजलियाँ खुद अपने गुलशन पर गिरा लेते
हैं लोग।

हो खुशी भी उनको हासिल ये जरूरी तो नहीं
गम छुपाने के लिए भी मुस्कुरा लेते हैं लोग।

ये भी देखा है कि जब आ जाये गैरत
का मुकाम
अपनी सूली अपने काँधे पर उठा लेते हैं लोग।

शमीम हनफी

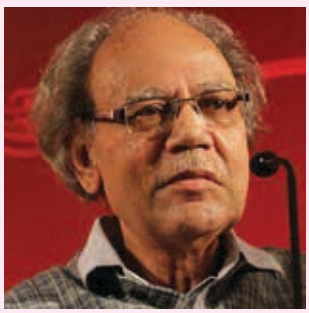

अब कैस है कोई न कोई आबला-पा है।
दिल आठ पहर अपनी हदें ढूँढ रहा है।

एहसास की वादी में कोई सौत न सूरत
ये मंज़िल-ए-इरफान तक आने का सिला है।

जख़्मों के बयाबाँ में कोई फूल न पत्थर
यादों के जजीरे में न बुत हैं न खुदा है।

इक खाक के पैकर का तमाशा है सड़क पर
हर शख़्स यहाँ कहर की तस्वीर बना है।

मिट्टी के घरौंदे में सितारों के दिए हैं
आँगन में अँधेरा न उजाला न हवा है।

अब अंजुमन-ए-शौक में शमएँ न पतिंगे
अब मर्ग-ए-मुसलसल की सजा है न जजा है।

चश्मों को शिकायत है कि शोलों में घिरे हैं
सहरा को ये दुख है कि पड़ा सूख रहा है।

अब नख़्ल-ए-रह-ए-शौक न साए न मनाज़िल
अब आबरू-ए-इश्क न सौदा न वफा है।

अब पाँव मुसाफि र हैं नफस मरहला-ए-जीस्त
अब वक़्त के हाथों पे न खूँ है न हिना है।

खूँ-रंग शफक-रंग खिजाँ-रंग हैं चेहरे
जिस्मों पे कफन है न कोई सुर्ख.कबा है।

सूरज को हथेली पे लकीरों की तमन्ना
अब चाँद की थाली में किरन है न दिया है।

अब दश्त के सीने पे फकत आग बिछी है
अब नक़्श-ए-कफ-ए-पा है न अब बाँग-ए-दरा है।

हर आँख चलाती हुई तश्कीक के नेजे
हर जेहन तजस्सुस की रिदा ओढ़ चुका है।

अल्फाज के चेहरे से अयाँ शान-ए-खमोशी
होंटों पे सवालात का इक जाल बिछा है।

क्यूँ शाम को बाहों में उलझने की हवस है
क्यूँ सुब्ह की पलकों में कोई ख़्वाब छुपा है।

क्यूँ रात के माथे पे चमकते हैं नगीने
क्यूँ दिन के रग-ओ-पय में कोई हश्र बपा है।

मशरिक के दरीचों से घुटन झाँक रही है
मगरिब की फजाओं में धुआँ फैल चुका है।

आशोब-ए-नजर हो कि तमन्नाओं के नश्तर
हर तश्त में जख़्मों का इक अम्बार लगा है।

कैलाश मनहर

सोचिये कैसी आ पड़ी होगी।
साफ लफ़्जों में जब तड़ी होगी।

या तो सच बोलने से बाज आओ,
वर्ना हाथों में हथकड़ी होगी।

आँखों में खून आना चाहेगा,
आँसुओं की लगी झड़ी होगी।

वक़्त जैसे कि ठहर जायेगा,
और चलती हुई घड़ी होगी।

जब भी हिम्मत से कही जायेगी,
बात कानून से बड़ी होगी।

कुलदीप विद्यार्थी

जो छुपा है, उस हुनर को आजमाया जाएगा।
हर किसी को सच यहाँ खुलकर बताया जाएगा।

कट गई है उम्र भी जिसकी लिबासों के बिना,
आखरी है वक्त, दुल्हन सा सजाया जाएगा।

नाम पर जिनके कभी सिक्के चले है शीर्ष पर,
हाशिये पर देखना उनको बिठाया जाएगा।

खुशनुमा माहौल में गजलें सुनाई रात भर,
ज्यों कदम घर में रखूँगा, दर्द गाया जाएगा।

थक गया हूँ देखकर सूरज उदय को पूर्व से,
आज पश्चिम से नया सूरज उगाया जाएगा।

जिंदगी में आपने खुद से किए अनुबंध कुछ,
हर नए अनुबंध को कितना निभाया जाएगा।

देखना कुलदीप ये दिन फिर पलटकर आएगा,
जब कहोगे बात सच्ची तब दबाया जाएगा।

(संपर्क - 9703040756)

26 दिसंबर, जन्म दिन

शीन काफ निजाम

हम 'कबीर' इस काल के खड़े हैं खाली हाथ।
संग किसी के हम नहीं और हम सब के साथ।।

मन में धरती सी ललक आँखों में आकाश।
याद के आँगन में रहा चेहरे का प्रकाश।।

मन रफ़्तार से भागता जाता है किस ओर।
पलक झपकते शाम है पलक झपकते भोर।।

याद आई परदेस में उस की इक इक बात।
घर का दिन ही दिन मियाँ घर की रात ही रात।।

शाहिद मीर

कआँगन है जल-थल बहुत दीवारों पर घास।
घर के अंदर भी मिला 'शाहिद' को बनवास।।

दर्द है दौलत की तरह गम ठहरा जागीर।
अपनी इस जागीर में खुश हैं 'शाहिद-मीर'।।

हर इक शय बे-मेल थी कैसे बनती बात।
आँखों से सपने बड़े नींद से लम्बी रात।।

जीवन जीना कठिन है विष पीना आसान।
इंसाँ बन कर देख लो ओ 'शंकर' भगवान।।

कागज पर लिख दीजिए अपने सारे भेद।
दिल में रहे तो आँच से हो जाएँगे छेद।।

रास आई कुछ इस तरह शब्दों की जागीर।
'शाहिद' पीछे रह गए आगे बढ़ गए 'मीर'।।

'शाहिद' लिखना है मुझे ये किस की तारीफ।
डरा डरा सा काफि या सहमी हुई रदीफ।।

शब गुजरी बुझने लगा रौशनियों का शहर।
लौटी साहिल की तरफ थकी थकी इक लहर।।

तातीलें रुख़्सत हुईं खुले सभी स्कूल।
सड़कों पर खिलने लगे प्यारे प्यारे फूल।।

जेहन में तू आँखों में तू दिल में तिरा वजूद।
मेरा तो बस नाम है हर जा तू मौजूद।।

अमन चाँदपुरी

जब-जब भी माँ ने कहा, कलम पकड़ ली हाथ।
कलम चली तो चल पड़े, अक्षर खुद ही साथ।।

आम जनों का ज्ञात है, पूजा-पाठी धर्म।
जो कवि है, जाने वही, मानवता का मर्म।।

पिता स्वर्गवासी हुए, पहुँच गए शमशान।
बँटवारे की बात भी, सुलगी चिता समान।।

पापिन, कुल्टा का लगा, उस पर है अभियोग।
जिसे मलिन करते रहे, खुद बस्ती के लोग।।

अस्पताल के फर्श पर, घायल पड़ा मरीज।
मगर चिकित्सक के लिए, उसकी चाय अजीज।।

मानवता की सोचता, तजकर सारे काम।
मर्यादित है जो पुरुष, वही आज का राम।।

नफरत का बिच्छू 'अमन', मार रहा है डंक।
प्रेम बस्तियाँ जल रहीं, फैल रहा आतंक।।

कुहरा आकर द्वार पर, खटका रहा किवाड़।
कहता कुंडी खोल दो, बहुत लग रही जाड़।।

पतझड़ गीत / जॉन कीट्स

अंग्रेजी के कवि जॉन कीट्स के दो गीत (ओड) झ 'टू ऑटम' और 'टू ए नाइटिंगेल' बहुत प्रसिद्ध हैं। कीट्स का जीवन कुल पच्चीस वर्षों का रहा झ संघर्ष, अभाव, अवमानना और अवसाद से भरा एक तपेदिक-ग्रस्त जीवन। 19वीं सदी के प्रारंभ में लंदन के निकट हैम्पस्टेड के एक ग्रामीण इलाके में एक मकान में वह रहता था, जहां बगल में रहने वाली एक लड़की झ फैनी ब्राउन से उसे प्यार हुआ। वहीं 1919 की ग्रीष्म-ऋतु में कीट्स ने कई 'ओड' लिखे। ये वही दिन थे, जब आलोचक उसकी प्रकाशित रचनाओं की निंदा में लगे थे, और वह फैनी के प्रेम में आकंठ डूबा हुआ था। भयंकर अभाव की स्थिति में तपेदिक रोग उसको तेजी से ग्रसता जा रहा था। शीत-ऋतु में तपेदिक के प्रकोप से बचने के लिए वह अपने चित्रकार मित्र जोसेफ सेवर्न के साथ सितम्बर 1920 में इटली गया लेकिन तब तक रोग असाध्य हो चुका था और 23 फरवरी, 1921 की आधी रात से कुछ पहले सेवर्न की बाहों में ही उसकी सांस टूट गई। वहीं रोम में ही उसे दफनाया गया और उसीकी लिखी पंक्ति उसके कब्र के पत्थर पर अंकित हुई झ 'यहीं सोया है वह, जिसका नाम पानी पर लिखा है।' 'ओड टू ऑटम' 19 सितम्बर, 1919 को लिखा गया, जब कीट्स पास की 'इचेन' नदी और उसके पास के खेतों में टहल कर वापस आया था। वहाँ खेतों में फसल की कटाई हो चुकी थी और शाम को वह अपने मानस में वहां से बहुत-सारे चित्रों को संजो कर लौटा, जिन्हें उसने इस कविता में सजाया है-

कुहराए कुहराए ओ मौसम !
घुलते-मदमाते फलों के मौसम !
अंकशायी सखा तुम उगते-उभरते सूरज के,
चोरी-चुपके घुले-मिले उससे
छतों की फूस पर लतराये अंगूर-बेल को

रस-भरे फलों से गदराते-असीसते,
काई-लगे सेव-पेड़ों को भार से नवाते,
अंतर तक हर फल को रस से पूरते,
कदुए को फुलाते, हेजल-फलियों को
भीतर तक मधु-रस से पागते,
ग्रीष्म के फूलों को अब भी
ढेर के ढेर चटकाते, इतने
कि मधुमक्खियाँ झ जिनके
मधु-सने खोंतों से
ग्रीष्म का मधु ढरकने लगा है झ
शायद इस मीठे भ्रम में फंस गई हैं
कि गर्मी के सुखद दिन कभी नहीं बीतने वाले !

किसने नहीं देखा तुम्हें फसलों के ढेरों से घिरे,
जिसने भी ताका-झाँका है, पाया है तुम्हें
खुले खलिहानों में अलसाए बैठे
जब ओसवाती हवा के झोंके
तुम्हारे लहराते लटों से हल्के-हल्के खेल जाते हैं.
या अधकटी क्यारियों पर बेसुध सोये
अहिपुष्पों के गंध से मदहोश
जबकि तुम्हारे हंसिये से अनकटी छूट जाती हैं
अझुराए फूलों वाली कई-कई क्यारियाँ.

और कभी तुम्हे देखा है
कटनी वाला बोझा सिर पर उठाये
संभल कर पार करते किसी नाले को.
या कभी सेव कसने वाली मशीन के पास
चुपचाप, एकटक ताकते-देखते
सेव-रस की आखिरी-आखिरी गिरती बूंदें.

कहाँ गए वे गीत वसंत के ? कहाँ गए वे ?
भूल जाओ उन्हें तुम, सोचो अपने संगीत की झ
जब बादलों की पंक्तियाँ साँस तोड़ते दिन
के रंगों में अपने को भिंगो रही हैं,
और कटे-कटे खेतों की खूंटियां तक
एक गुलाबी आभा से रंग-रंग गई हैं;
तब नदी किनारे नरकट-झुरमुट में
कीड़े-मकोड़ों का एक उदास-सा संगीत
हवा झोंकों पर उतराता-डूबता रह जाता है;
और उधर पहाड़ी झरनों की ओर
भरे-पूरे मेमनों का स्वर उभरता होता है,
झाड़ियों से फतिंगों के गीत उठते हैं,
और बगीचे के बीच कहीं झ
ऊंची चीख लगाती है एक ललमुनियाँ
जबकि आकाश में जुटते अबाबीलों की
टिरटिराहट भरी होती है.

(अनुवाद : मंगलमूर्ति)

असद जैदी

कितने लोग हैं इस दुनिया में जिन्होंने गाहे बगाहे
रोककर कभी मुझसे कहा ऐ भैया...
किसी ने बस रास्ता पूछा एक औरत ने आधी रोटी
माँगी
या कहा कि बीमार है छोरी, किसी डागदर से मिलवा दे
किसी ने इसलिए पुकारा कि मुड़के देखूँ तो मेरी
शक्ल देख सके
आंखें मिचमिचाए और कहे, भैया तू कहाँ कौ है
इनमें से कुछ तो कभी के गुजर गए, कुछ अभी हैं
कैसे जानूँ कौन भूत है, कौन अभूत
दानिश को इससे क्याङ्क कि सब रस्ते में हैं
दो पीढ़ी बाद अक्सर कोई बता नहीं पाता मामला
क्या था
जिस रजिस्टर में टूट फूट दर्ज हुई, वह बोसीदा हो
चला
कागज भी तो जैविक चीज है
स्याही-कलम-दवात से बहुत कुछ लिखा गया
01010101 में तब्दील नहीं हुआ और जान
लीजिए
कागज पत्तर भले कुछ बचे रहें 01010101 को
छूमंतर होते
जरा देर नहीं लगेगी
मरणशीलों में सबसे मरणशील है यह बाइनरी कोड
दुनिया के अंत के बारे में कोई नहीं जानता
सब उसके आरंभ के पीछे पड़े रहते हैं धर्म हो चाहे
वाणिज्य और विज्ञान
मिल-जुल के हम सब सब कुछ तबाह किये दे रहे
हैं इस विनाश की सामाजिकता
इसका मर्म इसके भेद अभेद जरूर किसी दैवी
मनोरंजन का मसाला हैं
तुम देख लो, सभी तो यहाँ बैठे हैं सारे यजीद,
फि रऔन, कारून, इबलीस, नमरूद, दज्जालङ्क
तुम पूछती थी या अल्लाह क्या अब
हमारा कब्रिस्तान भी हमसे छीन लिया जाएगा
वक़्त आने पर मैं कहाँ जाऊँगी ङ्क
ऐसी ही मरी रहना अब, मेरी आपा
सुकून की नींद भी ऐसी ही होती है
बना रहेगा तुम्हारा कथानक वैसा जैसा कि तुम
छोड़कर गईं
और न आना जीने के लिये वही जीवन फिर से।

नदी अष्टधातु स्त्री/बोधिसत्व

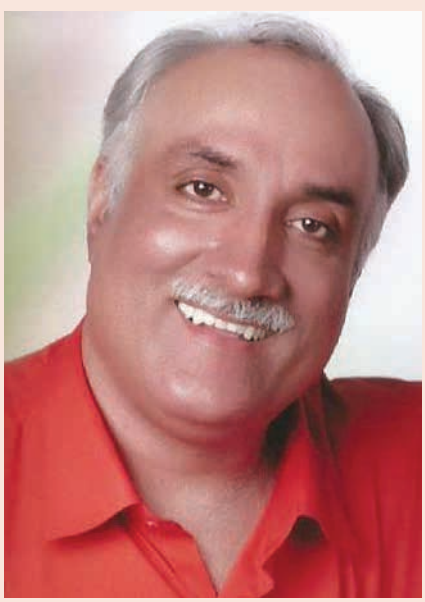

हर नदी अष्टधातु से
ढली एक स्त्री है।
जो अनादि युग से
खेत, वन, बाग
पर्वत, कंदरा, श्मशान
सबके दुख अपनी कोख में
लेकर बहती है
लेकिन मछलियाँ जानती हैं
कि नदियाँ अपना
एक-एक बूंद जल
चिड़ियों और गिलहरियों के लिए
बचा कर रखती हैं।
नदियाँ दिन में वृक्षों
और रात में नक्षत्रों
के लिए लोरी गाती हैं
और संधि बेला में
सूर्य को देख कर
और तरल हो जाती हैं।
जो लोग
नदी को पूजते हैं
और स्त्री को
निर्दाह जलाते हैं
नदियों के आख्यानों में
वे शव कहलाते हैं।

मंगलमूर्ति

मैं एक बहुत बड़े मकान का
सपना बराबर देखता हूं
जो न जाने कबसे अधूरा
बना पड़ा है एक अनजाने शहर में

उसकी बाहरी छोर पर
जहां शहर का आखरी मुहल्ला
खतम हो चुका है और जहां से
खेत चारागाह और पगडंडियां
शुरू हो जाती हैं गांव की ओर

जहां उस दुहरे सीमांत पर खड़ा है
लाठी टेके न जाने कितनी सदियों से
एक बूढ़ा बरगद का पेड़ लंबी दाढ़ी वाला
जिस पर एक बहुत पुराना भूत रहता है
जिससे चलती रहती है चुहल, नोंक-झोंक

पेड़ पर बसने वाली चिड़ियों के
हरदम गुलजार मुहल्ले की

वहां से दूर मैं आ गया हूं नदी किनारे
नदी जो सूखकर छिछली हो गई है

जिसके ऊंचे किनारों वाले सूराखों में
रहते हैं काले नाग, मोटे चूहे और घोंघे
नदी जहां गहरी है, दिन में नहाते हैं
गांव के बच्चे, नौजवान, बूढ़े उसमें

पर इस समय तो वहां कोई नहीं
एकदम सन्नाटा है चारों ओर
पूरे गांव में भी लगता है कोई है नहीं
पर कहां चले गये गांव के सारे लोग?

बरगद के पेड़ के पास भी सब सुनसान है
और वह आधा-अधूरा मकान भी
अब वहां नहीं है, बस एक खंडहर है
जहां मैं खड़ा था सपने में

अब तो लगता है कोई शहर भी
कभी था ही नहीं वहां
उस बूढ़े बरगद वाले सरहद के पार

(संपर्क : 7752922938)

प्रीति गुप्ता प्रियांशी

सवालों की परिधि में
अकेली खड़ी
होकर.....
नापती हूँ
सारे आयाम
कभी कोई सिरा
कभी कोई कोना
उलाहना
देते

मिल जाते हैं
सब तुम जैसे ही हैं
किसी को
मैं नहीं मिलती
उसके अनुरूप
किसी विभाजित से
स्नेह का
पारितोषिक है

नील कमल

कब तक कोई
जबड़े भींचे रह सकता है,

कब तक आँखों के
भीतर चढ़ते खून को
रोके रख सकता है कोई,

अपमान की आग में
सुलगता कब तक अपनी
सख्त मुट्ठियों को जेब के
अंदर घुसेड़े कोई रख सकता है,

एक दिन घृणा भी
माँगती है बाहर आने का रास्ता,

घृणा के साथ
किसी के नाम पर थूक देने में
भी दर्ज हो सकता है प्रतिवाद,

मार नहीं सकता अगर हत्यारों को
बिगाड़ नहीं सकता यदि उनका कुछ
थूक तो सकता ही हूँ उनके नाम पर
थूक कर कह तो सकता हूँ, लो यह रही,

यह जो मेरी घृणा है तुम्हारे लिए,
चौबीस कैरट खरी,
सोलह आना खाँटी ।

(संपर्क - 9433123379)

कविता दृश्य में नहीं, दृष्टि में होती है : नरेश सक्सेना

आज की कविता ने मुक्तिबोध की तरह खतरे नहीं उठाए : अशोक वाजपेयी

मुक्तिबोध पूर्वज ही नहीं, हमारे समकालीन कवि भी : असद जैदी

दिल्ली/उत्तर प्रदेश/छत्तीसगढ़। मुक्तिबोध जन्मशती पर पिछले दिनो दिल्ली, रायपुर और बाराबंकी (उ.प्र.) में देश के शीर्ष कवि-साहित्यकारों ने मुक्तिबोध और उनके साहित्य पर चिंतन-मनन किया। रजा फाउंडेशन की ओर से रायपुर के वृंदावन सभागार कवि अशोक वाजपेयी ने कहा कि सत्रह साल की उम्र से सात वर्षों तक मृत्युपर्यंत मुक्तिबोध से जुड़े होना उनका सौभाग्य रहा। उन्हें अज्ञेय शमशेर, मुक्तिबोध जैसे बड़ों की छाया में जिन्दगी और साहित्य को समझने का अवसर मिला। मैं मुक्तिबोध जैसे अकेले कवि की तो कल्पना भी नहीं कर सकता। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' क्या इस समय की कविता लगती है। क्या हम आज पहले से ज्यादा अंधेरे में हैं। कविता मुक्तिबोध पथ से हटती गयी है। उनकी कविता एक बीहड़ का नाम है। वे हिंदी कविता के स्थायी प्रतिलोम हैं। अज्ञेय के अलावा अधिकांश हिंदी कविता के प्रतिलोम हैं। आज की कविता ने उतने खतरे नहीं उठाए, जितना मुक्तिबोध ने। वे अपनी प्रतिबद्धता के प्रति भी शंकालु थे। जहां आज अधिकांश कविता ने संप्रेषणीयता के पक्ष में समझौते किये हैं, वे संप्रेषण में विफल रहे, आलोचकों का ध्यान खींचने में विफल रहे, मप्र के कवियों का एक संचयन 'नर्मदा की सुबह' के प्रकाशन में विफल रहे। निजी जीवन में विफल रहे। वे छोटी कविता की तानाशाही के विपरीत लंबी कविता लिखते हुए भी उसे छपवाने में विफल रहे। मुक्तिबोध पर श्रीकांत वर्मा की यह पंक्ति सटीक लागू होती है कि मैं विफलताओं का प्रणेता हूँ। आत्मा के गुप्तचर उनका ही पद है, जो उनकी कविता पर सटीक लागू होता है।

उन्होंने कहा कि मुक्तिबोध सबसे बड़े आत्माभियोगी कवि हैं। वे अपनी प्रतिबद्धता को लेकर भी शंकालु थे। नेमिचंद जैन, हरिशंकर परसाई, नरेश मेहता, प्रमोद वर्मा आदि उन्हें जीवनकाल में आश्वस्त कर पाए कि वे महत्वपूर्ण कवि हैं। वे विराट के कवि थे। तुच्छ से तुच्छ तक उनके यहां विचार से अनुप्राणित हो जाता है। वे राजनीतिक से ज्यादा नैतिक कवि हैं। मुक्तिबोध की राजनीति पर तो ध्यान जाता है पर उनकी नैतिकता और अध्यात्म पर ध्यान कम जाता है। उनके यहां सत चित आनंद, सत चित वेदना हो जाती है। महान साहित्य में प्रेम और मृत्यु के दो ध्रुवान्त होते हैं। इस लिहाज से प्रेम और कालबोध के बिना उनका बड़ा कवि होना चकित करता है। उन पर छायावाद का प्रभाव तो है पर छायावादोत्तर काव्यभाषा का प्रभाव बिल्कुल नहीं। वाजपेयी ने बताया कि कैसे 'चांद का मुंह टेढा है' शीर्षक का चयन हुआ। पहले श्रीकांत वर्मा ने सुझाया कि 'सहर्ष स्वीकारा है' होना चाहिए। फिर विचार के लिए दो शीर्षक सुझाए। एक- 'टूटता चांद कब डूबेगा', दूसरा- 'चांद का

मुंह टेढा है', क्योंकि मुक्तिबोध की कविता का पाठ कुछ अनभ्यस्त और बीहड़-सा था तो दूसरा नाम सबको पसंद आया।

अशोक वाजपेयी ने कहा कि लगता है, मुक्तिबोध ने इस समय और समाज के हश्र को अधसदी पहले ही देख लिया था। इसीलिए जब अन्धेरे में कविता लिखी गयी तो बेशक कुछ अतिरेक लगता रहा हो, पर आज सच लगता है। आज हम अधिक अभेद्य अंधेरे में हैं। उनके पथ के नामलेवा बहुत हैं, उन पर चलने का साहस लोगों में नहीं है पर वे साठ के अवांगार्द थे, अधसदी बाद भी वे अवांगार्द बने हुए हैं। हिंदी के सबसे अकेले कवि हैं और लगता है कि दशकों तक बने रहेंगे। अशोक वाजपेयी ने हाल में मुक्तिबोध के साथ जुडे दो महत्वपूर्ण क्षणों को याद किया। पहला तो वाक के कार्यक्रम में जिक्र किया कि जब वे उनके राजनांद गांव के घर गए जो कि हवेलीनुमा थी, तालाब के किनारे थी तो वहां सब कुछ बीहड सा था। शाम भोजन परोसने पर सूखी रोटियां देख कर मुक्तिबोध ने अपनी पत्नी से कहा कि आज अशोक आया है; रोटियों में घी तो लगाया होता। दूसरे मुक्तिबोध शती समारोह के धन्यवाद ज्ञापन के समय उन्होंने उन निहायत निजी क्षणों को याद किया, जब उनकी मृत्यु का समाचार देने श्रीकांत वर्मा की सलाह पर वे पीटीआई के आफिस गए, जहां देर रात केवल पीटीआई प्रभारी डयूटी पर थे। बाकी सब जा चुके थे। लिहाजा टेलीप्रिंटर पर कोई समाचार टाइप कर भेजने वाला न था। प्रभारी ने यह तो माना कि यह महत्वपूर्ण समाचार है, इसे जाना चाहिए। पर जब टेलीप्रिंटर आपरेटर के न होने की समस्या बताई तो उन्होंने कहा कि टेलीप्रिंटर पर क्या होता है। उसने बताया कि न्यूज टाइप कर के भेजनी होती है। मैंने कहा कि टाइप तो मैं भी कर सकता हूँ...और अंततः मैंने उस मृत्यु के समाचार को खुद टेलीप्रिंटर पर टाइप किया। ऐसा बताते हुए उनकी आंखें छलक आईं।

इसी तरह जनवादी लेखक संघ और राजेंद्र प्रसाद अकादमी के साझा संयोजन में नई दिल्ली के राजेंद्र भवन सभागार में गजानन माधव मुक्तिबोध पर केंद्रित जन्मशती जलसा में हिंदी के वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना ने मुक्तिबोध-साहित्य का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए कहा कि कविता दृश्य में नहीं, दृष्टि में होती है। वह दृष्टि मुक्तिबोध में थी। ख्यात कवि असद जैदी ने कहा कि मुक्तिबोध हमारे पूर्वज ही नहीं, समकालीन कवि भी हैं। प्रियदर्शन ने कहा कि मुक्तिबोध लेखन व कला की ईमानदारी पर जोर देते थे। उनके लेखन में बिजली की तरह प्रवाह था। उन्होंने अपने लेखन में राजनीतिक परिवेश का चित्रण नहीं किया, लेकिन समय का अपूर्व चित्रण किया है। इससे पूर्व 'नया पथ' के मुक्तिबोध विशेषांक का लोकार्पण किया गया। इसके बाद नरेश सक्सेना, असद जैदी, जयप्रकाश कर्दम, शुभा और प्रियदर्शन ने मुक्तिबोध के जीवन और उनके साहित्य पर अपने विचार व्यक्त किए। दूसरे सत्र में नरेश सक्सेना, इरफान और अकबर रिजवी ने मुक्तिबोध की चुनिंदा कविताओं का पाठ किया। इसके बाद लोकेश जैन निर्देशित लघु नाटिका मंडला में मुक्तिबोध को उनकी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने के साथ ही कुणाल निर्देशित 'द कलर बेकरी' लघु नाटिका भी प्रदर्शित की गई।

बाराबंकी (उ.प्र.) के जवाहरलाल नेहरू पीजी कॉलेज में मुक्तिबोध पर आयोजित सेमिनार में वरिष्ठ आलोचक विजय बहादुर सिंह ने कहा कि मुक्तिबोध की कविताएं अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा करती हैं। वे लंबे दौर के अंधकार की पहचान करती हुई उसके गहन होते जाने के कारणों की आश्चर्यजनक पड़ताल करती हैं। चूंकि ये कारण आज और ज्यादा मजबूत हो रहे हैं, ऐसे में मुक्तिबोध की कविता की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। प्रो. सदानंद शाही ने कहा कि मुक्तिबोध सूखी टहनी के भीतर की आग को पहचानने और उसे प्रत्यक्ष करने वाले कवि हैं। प्रोफेसर सूर्य नारायण ने कहा कि कठिन और जटिल समय में घिरे हुए लोगों को मुक्तिबोध रोज याद आते हैं। विवेक निराला ने कहा कि अपनी अन्तः प्रकृति, प्रक्रिया और अन्तःवस्तु के स्तर पर मुक्तिबोध की कविता बिल्कुल नए ढंग की है। वह बड़े कवि हैं। उनकी कविता पाठक से अपेक्षा करती है कि मेरे पास आओ और मुझे समझो। प्रोफेसर पवन अग्रवाल ने कहा कि मुक्तिबोध आमजन से जुड़ते हैं। दूसरे सत्र में मुक्तिबोध का गद्य साहित्य पर चर्चा हुई। इसमें कवि-आलोचक चन्द्रेश्वर ने कहा कि मुक्तिबोध की कविताओं के समझने के बहुत से सूत्र उनके गद्य साहित्य में मिलते हैं। कौशल किशोर ने कहा कि मुक्तिबोध के साहित्य को समझने के लिए उनके जीवन और दर्शन को समझना जरूरी हो जाता है।

लखनऊ (उ.प्र) के निशातगंज स्थित कैफी आजमी अकादमी में पिछले दिनो जलेस की ओर से 'जीने का संकट और प्रतिरोध की कविता' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में राजेश जोशी की कविता 'जो अपराधी नहीं होंगे मारे जाएंगे' का पाठ किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे कवि असद जैदी ने कहा कि हम एक नैतिक पतन के दौर में जी रहे हैं। कविता प्रतिरोध भी होती है और उस नैतिक कमी को पूरा भी करती है। गोष्ठी में नरेश सक्सेना, तरुण निशांत, ज्ञानप्रकाश चौबे, जलेस अध्यक्ष नलिन रंजन सिंह, मदन कश्यप, अशोक कुमार पांडेय आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

जगूड़ी ने किया संघर्षशील कवि 'प्रदीप' की कविताओं का पाठ

वैली आफ वर्ड्स के शब्दोत्सव में जुटे देश के जाने-माने कवि-साहित्यकार

अलग-अलग समारोहों में सोमवारी लाल उनियाल 'प्रदीप', मुनव्वर राणा, संतोष चौबे, नितिन साठे और नमिता गोखले का सम्मान

देहरादून (उत्तराखंड)। प्रदेश की राजधानी में पिछले दिनो दो बड़े साहित्यिक समारोह हुए। पहला, वरिष्ठ कवि, लेखक, पत्रकार सोमवारी लाल उनियाल 'प्रदीप' का 75वें जन्मदिन पर सम्मान। दूसरा, इंटरनेशनल लिटरेचर एंड आर्ट्स फेस्टिवल 'वैली आफ वर्ड्स' का साहित्य-कला उत्सव, जिसमें देश के कई बड़े कवि-साहित्यकारों ने शिरकत की। 'प्रदीप' के समारोह में शीर्ष कवि लीलाधर जगूड़ी की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही।

उमेश डोभाल स्मृति ट्रस्ट के तत्वाधान में आयोजित इस कार्यक्रम में पत्रकारों, साहित्यकारों के अलावा सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक क्षेत्रों की भी कई हस्तियां मौजूद रहीं। उत्तरांचल प्रेस क्लब के सभागार में वक्ताओं ने 'प्रदीप' के जीवन और रचना संघर्षों पर सविस्तार अभिमत दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी ने 'प्रदीप' की कविता की कुछ पंक्तियों का पाठ किया। बच्चीराम कौंसवाल

और समर भंडारी ने 'प्रदीप' के रचनात्मक संघर्षों पर प्रकाश डाला। लोक गायक नरेन्द्र सिंह नेगी और आन्दोलनकारी सुशीला बलूनी ने 'प्रदीप' की पत्रकारिता-साहित्य से जुड़ी उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। ट्रस्ट के सचिव ललित कोठियाल ने सम्मान पत्र भेंट किया। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ यूएस रावत ने 'प्रदीप' की साहित्यकार के अलावा एक प्रखर वक्ता के रूप में भी प्रशंसा की। इस अवसर विभिन्न संस्थाओं की ओर से 'प्रदीप' को शॉल, प्रतीक चिन्ह, उपहार भेंट किए गए। 'प्रदीप' के बड़े पुत्र आशीष ने साहित्यिक पत्रकारिता पर केन्द्रित उत्तरांचल विशेषांक का सम्पादन किया। छोटे पुत्र अखिलेश ने परिवार की ओर से धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम में वरिष्ठ कहानीकार सुभाष पंत, पत्रकार वीरेन्द्र डंगवाल, वीणापाणी जोशी, आनन्द दीवान, एस.एम.ए. काजमी, जयसिंह रावत, शिव जोशी, संजय कोठियाल, जगमोहन मेंहदीरत्ता, विवेक खण्डूरी, नीता कुकरेती, अम्बर खरबंदा, डॉली डबराल आदि मुख्य रूप से उपस्थित रहीं। संचालन उत्तराखण्ड कांग्रेस उपाध्यक्ष सूर्यकांत धस्माना ने किया।

इंटरनेशनल लिटरेचर एंड आर्ट्स फेस्टिवल 'वैली आफ वर्ड्स' के तीन दिवसीय साहित्यिक समारोह का उदघाटन उत्तराखंड के राज्यपाल डॉ. केके पाल ने किया। राजपुर रोड स्थित मधुबन होटल में द शिवालिक हिल्स फाउंडेशन ट्रस्ट के बैनर तले आयोजित इस कार्यक्रम में राज्यपाल ने कहा कि उत्तराखंड महान हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत की जन्मस्थली है। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने 'गीतांजलि' की रचना कुमाऊं की पहाड़ियों में ही शुरू की थी। इस मौके पर मुख्य सचिव उत्पल कुमार, एफआरआई की निदेशक डॉ. सविता, नेशनल बुक ट्रस्ट के चेयरपर्सन डॉ. बलदेव भाई शर्मा, रोबिन गुप्ता ने भी विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का संचालन ऑनरेरी एडवाइजर नवीन चोपड़ा ने किया। समारोह को हिंदी के जाने माने साहित्यकार प्रो. गंगा प्रसाद विमल, ख्यात आलोचक डॉ ओम निश्चल, प्रसिद्ध व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय, वरिष्ठ कवि विष्णु नागर, शीर्ष गीतकार डॉ बुद्धिनाथ मिश्र, मशहूर शायर मुनव्वर राणा, कवि लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, सांसद तरुण विजय आदि ने भी सम्बोधित किया। 'तराना' सत्र में प्रो. राजेंद्र गौतम के दोहा अलबम के विमोचन के साथ ही विष्णु नागर, डॉ ओम निश्चल, डॉ बुद्धिनाथ मिश्र, डॉ लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, ममता किरण, 'कविकुंभ' की संपादक रंजीता सिंह आदि ने काव्यपाठ किया।

विदाई सत्र में चार विभूतियों मुनव्वर राणा ('मीर आकर लौट गया'), संतोष चौबे ('जलतरंग'), नितिन साठे ('बोर्न टु फ्लाई') और नमिता गोखले ('थिंग्स टु लीव बिहाइंड') को 'वैली ऑफ वर्ड्स' अवार्ड से नवाजा गया। अवार्ड के साथ प्रशस्ति पत्र और एक-एक लाख रुपये की धनराशि प्रदान की गई। अमर उजाला फेस्टिवल का मीडिया पार्टनर रहा। ओएनजीसी के कार्यकारी निदेशक आशुतोष भारद्वाज, पूर्व सांसद तरुण विजय, सेवानिवृत्त आईएएस रोबिन गुप्ता ने लेखकों को अवार्ड प्रदान किए। कार्यक्रम का संचालन फेस्टिवल के ऑनरेरी एडवाइजर संजीव चोपड़ा और लेखक ओम निश्चल ने किया। मुनव्वर राणा की गजलों ने समा बांध दिया। डॉ. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी ने धन्यवाद ज्ञापित किया। महत्वपूर्ण बात यह रहा कि समारोह में व्यंग्य लेखन को स्वतंत्र मंच मिला। इसमें विवेक मिश्र, सतीश अग्निहोत्री एवं युवा व्यंग्य लेखिका नेहा बहुगुणा के साथ अध्यक्ष की भूमिका निभाते हुए व्यंग्य के कूपमंडूक चिंतन से अलग व्यापक चिंतन को चिन्हित किया गया। समृद्ध श्रोताओं में प्रसिद्ध कथाकार ममता कालिया, धर्मेंद्र पांडेय, सुरेश ऋतुपर्ण, महेश भारद्वाज आदि की विशेष उपस्थिति रही।

उन्ही दिनो देहरादून में रूप पब्लिशर्स की ओर से आयोजित चार दिवसीय इमेजिन फॉल बुक फेस्टिवल के अंतिम दिन लेखक राजीव डोगरा ने स्कूली बच्चों को जीवन में साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि साहित्य हमारे व्यक्तित्व का विकास करता है। इसलिए साहित्य को सिर्फ कहानी या जीवनी के रूप में नहीं लेना चाहिए बल्कि, उसमें छिपी सोच और जीवन के नजरिए से प्रेरणा लेनी चाहिए। वृंदा चौहान और सुष्मिता रावत ने अपनी लेखनी में छिपी साहित्य की प्रतिभा से परिचित कराया।

मातृभाषा में ही साहित्य का स्वर्ण युग : मैनेजर पांडेय

दिल्ली/हरियाणा। हिंदी के प्रख्यात आलोचक मैनेजर पांडेय ने पिछले दिनो राजधानी दिल्ली में साहित्य अकादमी और रमणिका फाउंडेशन के साझा संयोजन में 'आदिवासी और दलित साहित्य : लघु पत्रिकाओं का योगदान' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में, साथ ही हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय (महेंद्रगढ़) में 'भाषा और साहित्य क्यों पढ़ें' विषय पर व्याख्यान दिए। उन्होंने कहा कि साहित्य अनुभूतियों और संवेदनाओं को मनुष्यों के बीच फैलाने का सबसे उपयोगी और उत्कृष्ट माध्यम है। सच्चा सामाजिक लोकतंत्र दलित एवं आदिवासी साहित्य के समावेश से ही आएगा। आदिवासी एवं दलित साहित्य को आगे बढ़ाने के लिए विलुप्त होती भाषाओं के साहित्य को प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनूदित किया जाना अत्यंत आवश्यक है। तभी हमारी यह परंपरा समृद्ध होगी। दलित, आदिवासी, स्त्रियों और अन्य विचारवान दलों के एक साथ होने पर यह आवाज और मजबूत तथा व्यापक होगी।

उन्होंने कहा कि भाषा हमारी पहचान का पहला रूप है और अभिव्यक्ति एवं चिंतन का सशक्त माध्यम। समाज और मनुष्य की समय-समय पर दी गई परिभाषाओं के माध्यम से गुजरते हुए हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य की सबसे उचित और सटीक परिभाषा है- मनुष्य एक भाषिक प्राणी है। मनुष्य की भाषा उसके समाज, उसकी जातीयता, संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को एक साथ व्याख्यायित और निर्धारित करती है। हमारी मातृभाषा में ही हमारे साहित्य, संस्कृति कला और समाज का स्वर्ण युग आ सकता है। भारतीय साहित्य का स्वर्ण युग भक्तिकाल इसलिए है क्योंकि उस समय के समस्त कवियों ने अपनी-अपनी मातृभाषा में साहित्य रचा है।

साहित्य अकादमी की संगोष्ठी में मराठी साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले ने कहा कि लघु पत्रिकाओं ने ही आदिवासी-दलित आंदोलन को आगे बढ़ाया है। उनके कारण ही हमारी बात समाज तक तेजी से पहुंची और उसे एक पहचान मिली। मराठी लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ ने कहा कि आदिवासी और दलित साहित्य का स्वागत खुले दिल से किया जाना चाहिए, क्योंकि यह साहित्य इंसानियत और मानवाधिकार का पक्षधर है। हरीराम मीणा ने कहा कि आदिवासी एवं दलित लोगों और उनकी आवाज को मुख्यधारा में शामिल करने के लिए अब व्यापक आंदोलन और आपसी समझ की जरूरत है। रमणिका फाउंडेशन की अध्यक्ष एवं लेखिका रमणिका गुप्ता ने कहा कि साहित्य अकादमी ने हाशिये के स्वर को मंच प्रदान किया है। उन्होंने विभिन्न भारतीय भाषाओं के दलित एवं आदिवासी साहित्य में परस्पर अनुवाद और विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में विस्तार से अपनी बात रखी।

मेरठ लिटरेरी फेस्टिवल में जुटे भारत, नेपाल, भूटान के कवि-साहित्यकार

जो दिल को छू जाए, वही श्रेष्ठ साहित्य : राज्यपाल

मेरठ (उ.प्र.)। यहां गंगानगर स्थित आईआईएमटी यूनिवर्सिटी परिसर में आयोजित तीन दिवसीय मेरठ लिटरेरी फेस्टिवल में भारत, नेपाल, भूटान आदि के कवि-कवयित्रियों ने बड़ी संख्या में शिरकत की। लगातार तीन दिनो तक समकालीन साहित्य-चर्चा एवं काव्यपाठ हुआ। पहले दिन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल राम नाईक ने कार्यक्रम का शुभारंभ करते हुए कहा कि श्रेष्ठ साहित्य वह होता है, जो दिल को छू जाए। हिन्दी सभी भाषाओं की बड़ी बहन है। इस नाते हिन्दी की जिम्मेदारी भी ज्यादा है। हिन्दी समस्त भाषाओं को साथ लेकर आगे बढ़े। उन्होंने कहा कि पहला स्वतंत्रता संघर्ष मेरठ की धरती से ही शुरू हुआ। संघर्ष का अपना साहित्य होता है। साहित्य केवल मेरठ नहीं, पूरे भारत के सांस्कृतिक इतिहास की पूंजी है। उन्होंने अभिव्यक्ति की आजादी पर कहा कि यह कहां तक होनी चाहिए, इस पर में विचार करना होगा।

डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा अरुण ने कहा कि हिंदी को संविधान ने राजभाषा बनाया, लेकिन जनता ने इसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया है। सार्क विश्वविद्यालय के अध्यक्ष प्रोफेसर राजीव कृष्ण सक्सेना ने कहा भारत में 100 करोड़ लोग हिंदी समझते हैं, लेकिन हिंदी पढ़ने से दूर भाग रहे हैं। हिंदी अखबार, चैनल, सीरियल, फिल्में खूब देखी जाती हैं, मगर हिंदी बोलना कम हो रहा है। तीसरी से दसवीं कक्षा तक बच्चों को हिंदी में पढ़ाना अनिवार्य किया जाए। नेपाल की कवयित्री डॉ.श्वेता दीप्ति ने कहा कि भारत-नेपाल भले ही दो राष्ट्र हों, लेकिन वे आपसी संबंधों में एक हैं। नेपाल के कवि बसंत चौधरी ने कहा कि नेपाल भी भारत के साहित्य एवं साहित्यिक आंदोलन से प्रभावित रहा है। आयोजन के मुख्य कर्ता-धर्ता कवि डॉ.विजय पंडित और

मेरठ लिटरेरी फेस्टिवल के दो दृश्य : ऊपर के चित्र में 'कविकुंभ' नवंबर अंक के साथ (बीच में) संपादक रंजीता सिंह एवं कवि-साहित्यकार डॉ योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, श्रीगोपाल नारसन सुरेखा शर्मा, श्वेता दीप्ति, पूनम पंडित, संजय शर्मा, सच्चिदानंद मिश्र आदि। नीचे के चित्र में 'कविकुंभ' संपादक के सम्मान की एक झलक।

आईआईएमटी के कुलाधिपति योगेश मोहन गुप्ता ने राज्यपाल को स्मृति चिह्न प्रदान किया।

समारोह में रामगोपाल भारती की पुस्तक 'क्रांतिधरा', सुनील गुजराती की पुस्तक 'नादान रांझणा', डॉ. यूसुफ खान की 'पालनहार', सुनील वर्मा मुसाफिर की 'हाफिज खुदा तुम्हारा', राजीवकृष्ण सक्सेना की 'बाल गीता', अंजना बोरिल की 'आरू-बारू को फूल' का विमोचन किया गया। समारोह में नेपाल और भूटान के 50 से अधिक कवि-साहित्यकारों ने भाग लिया। इसी क्रम में बागपत रोड स्थित केएमसी कॉलेज परिसर में आयोजित कवि सम्मेलन में तिब्बत, भूटान एवं नेपाल के साहित्यकारों ने काव्यपाठ के जरिए दोनों देशों की संस्कृतियों की झलक पेश की। मीरा शलभ, डॉ.ममता वार्ष्णेय, डॉ.मधु प्रधान, शरद कुमार सक्सेना, डॉ.श्वेता दीप्ति, डॉ. हेमलता आदि ने काव्यपाठ किया। अतिथि प्रो. राजीव कृष्ण सक्सेना, भूटान के वरिष्ठ साहित्यकार छत्रपति फुएल, कनाडा के साहित्यकार सरन घई, नेपाल के साहित्यकार बसंत चौधरी, साहित्य अकादमी के पूर्व सदस्य डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा अरुण, 'कविकुंभ' संपादक रंजीता सिंह आदि अतिथियों का फेस्टिवल के मुख्य आयोजक डॉ.विजय पंडित, आईआईएमटी के कुलाधिपति योगेश मोहन गुप्ता, पूनम पंडित ने स्वागत किया।

संभल/मुरादाबाद(उ.प्र.)। यहां प्रमोद कृष्ण की ओर से कल्किधाम आश्रम में पिछले दिनो असलम के. सफी के संयोजन एवं नदीम फार्रुख के संचालन में एक भव्य मुशायरे का आयोजन किया गया, जिसमें मंजर भोपाली, जमील असगर, ज्योति आजाद खत्री, डॉ नासिर अमरोहवी, रंजीता सिंह, वरुण आनंद, सना बरेलवी, विनोद पाल, असद बस्तवी, पद्मिनी शर्मा, अजहर इकबाल की रचनाओं पर श्रोता पूरी रात साहित्य के आनंद में डूबे रहे। इस दौरान 'कविकुंभ' संपादक रंजीता सिंह को आयोजन समिति की ओर से सम्मानित किया गया।

भक्ति काव्य के संस्कार से ही महात्मा बने गांधी : गोपेश्वर

वर्धा (महाराष्ट्र)। यहां पिछले दिनो महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के गालिब सभागार में 'भक्ति काव्य और महात्मा गांधी' विषय पर अपने व्याख्यान में आलोचक प्रो. गोपेश्वर सिंह ने कहा कि महात्मा गांधी आधुनिक काल में भक्ति काव्य के जीवित भाष्य थे। भक्ति काव्य के कवियों कबीर, नानक, रैदास और तुलसीदास की गांधी के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भक्ति कवियों का अपरिग्रह महात्मा गांधी के जीवन में दिखाई देता है। सत्य से जुड़ाव के साथ आचरण और वाणी में समानता के तत्व उन्होंने भक्ति कवियों से ही लिए हैं। भक्ति काव्य अभय का संचार करने वाला रहा है।

प्रो. सिंह ने कहा कि गांधी पर भक्ति आंदोलन के कवियों का गहरा प्रभाव रहा है। उन्होंने रामराज्य, चरखा आदि प्रतीकों को भक्ति आंदोलन से ही लिया है। अध्यात्म और श्रम को चरखा और स्वराज-स्वावलंबन से जोड़ा। गांधी ने नानक और कबीर के श्रम को जीवन में उतारा। उनका मानना था कि श्रम के भेद को खत्म करना ही आधुनिकता है। बेरोजगारी, प्रदूषण, अस्वच्छता आदि को खत्म करने के लिए हमें गांधी के बताए रास्ते ही अपनाने होंगे। अध्यक्षीय सम्बोधन में कुलपति प्रो. गिरीश्वर मिश्र ने कहा कि जीवन के शाश्वत मूल्यों से भक्ति काव्य के सूत्र जुड़े हुए हैं। आज के कोलाहल भरे वातावरण में भक्ति कार्य और गांधी प्रासंगिक लगते हैं। भक्ति काव्य में समावेशी परंपरा है और उसे गांधी ने आधुनिक स्पर्श देकर हमारे सामने रखा है।

ब्रजभाषा की गरिमा खतरे में : डॉ अरविंद त्रिपाठी

मथुरा (उ.प्र.)। स्वतंत्रता आंदोलन में प्रभात फेरियों के माध्यम से जन-जागरण करने वाले सुप्रसिद्ध गांधीवादी संस्कृतविद् विश्वम्भरनाथ चतुर्वेदी 'शास्त्री' का जन्मशती समारोह पिछले दिनो यहां होटल गंगा पैलेस सभागार में आयोजित किया गया। समारोह की अध्यक्षता कर रहे कवि-आलोचक डॉ अरविंद त्रिपाठी ने कहा कि हमारी भाषा, बोलियों और संस्कृति को नष्ट कर अपसंस्कृति को बढ़ावा दिया जा रहा है। जिस ब्रजभाषा ने पांच शताब्दी पूर्व सूर, मीरा और रसखान जैसे कवि दिए, उस भाषा की साहित्यिक गरिमा को बचाए रखना कठिन होता जा रहा है। मुख्य अतिथि हिमांशु कुमार ने कहा कि देश का आधुनिक विकास ब्रिटिश इंडिया मॉडल का विस्तार है।

रंगकर्मी डॉ विजय शर्मा ने कहा कि देश की युवा पीढ़ी को धर्म, जाति और साम्प्रदायिकता के सवालों में उलझा कर बेरोजगारी और अराजकता

की आग में धकेला जा रहा है। शिवदत्त चतुर्वेदी एवं समिति के सचिव उपेन्द्रनाथ चतुर्वेदी ने कहा कि शास्त्री जी द्वारा स्वतंत्रता से पूर्व एवं पश्चात चलाई गई जनचेतना और जनजागरण की मुहिम समाज की सांस्कृतिक मशाल बननी चाहिए। समारोह के दूसरे सत्र में कवियों ने अपनी कविताओं का पाठ किया। समारोह में नगर के साहित्यिकारों, बुद्धिजीवियों, कलाकर्मियों ने शास्त्रीजी को श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर देश के पांच कवि-साहित्यकारों, समाजसेवियों दिनेश राय द्विवेदी, हिमांशु कुमार, शैलेन्द्र चौहान, डॉ विजय शर्मा और महेश कटारे 'सुगम' को सम्मानित किया गया।

समारोह में शास्त्री जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केन्द्रित पुस्तिका 'उठो सोने वालो' तथा महेन्द्र नेह के जनगीत संग्रह 'हम सब नीग्रो हैं' का लोकार्पण हुआ। आगरा की 'पीपुल्स लिब्रेरिया' टीम की ओर से कविता-पोस्टर एवं पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध गजलकार महेन्द्र हुमा तथा आकाशवाणी मथुरा-वृंदावन के उप-निदेशक कवि, आलोचक डॉक्टर अरविंद त्रिपाठी ने की। संचालन कवि महेंद्र नेह ने किया। समिति के अध्यक्ष मधुसूदन लाल चतुर्वेदी ने आगंतुकों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

पटना में देशभर के लघु कथाकारों का सम्मान

लोक साहित्य जन-संस्कृति का प्रेम और प्रतिरोध है : सत्यपाल मलिक

पटना (बिहार)। राजधानी में पिछले दिनो दो बड़े साहित्यिक आयोजन हुए। एक, तारामंडल सभागार में साहित्यकार सम्मान समारोह, दो, नृत्य कला मंदिर में 29वां लघुकथा सम्मेलन। दोनो आयोजन के मुख्य अतिथि राज्यपालद्वय सत्यपाल मलिक और डॉ मृदुला सिन्हा रहीं। साहित्यकार सम्मान समारोह में राज्यपाल मलिक ने कहा कि लोक साहित्य की धारा को समाज में अधिक से अधिक प्रतिष्ठा दिलाने की आवश्यकता है। इसके लिए साहित्यकारों को आगे आना चाहिए। वास्तव में लोक साहित्य जन-संस्कृति का प्रेम और प्रतिरोध है।

'लोक साहित्य में नारी' विषय पर आयोजित 13वें उदयराज सिंह स्मृति व्याख्यानमाला में मुख्य वक्ता के रूप में गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा ने कहा कि लोक में केवल स्त्री-पुरुष और बच्चे ही नहीं आते बल्कि, प्रकृति, पशु-पक्षी, नदी-समुद्र आकाश-पाताल सब आते हैं। साहित्य सबका जीवन होता है। राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने मृदुला सिन्हा को उदयराज सिंह स्मृति सम्मान से विभूषित करते हुए उन्हें एक लाख रुपये सहित सम्मान-पत्र, प्रतीक चिन्ह एवं शॉल अर्पित किए। प्रधान संपादक प्रमथराज सिन्हा ने दिल्ली के लेखक-पत्रकार सुरेश उनियाल, गोरखपुर के

बीआर विप्लवी एवं भुवनेश्वर के कथाकार गौरहरि दास को नई धारा रचना सम्मान देते हुए उन्हें 25-25 हजार रुपये सहित सम्मान-पत्र, प्रतीक चिन्ह एवं शॉल अर्पित किए। समारोह का संचालन डा. शिवनारायण ने किया।

नृत्य कला मंदिर में अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच की ओर से आयोजित 29वें लघुकथा सम्मेलन के समापन समारोह को संबोधित करते हुए डॉ. मृदुला सिन्हा ने कहा कि लघु कथाओं का इतिहास पौराणिक है। वैदिक काल में लघु कथाओं का जिक्र है। पौराणिक काल की रचनाओं को उठाकर देख लीजिए, लघु कथाओं का संग्रह मिल जाएगा। रामायण और महाभारत लघुकथाओं का संग्रह हैं। बच्चों पर बोध कथाओं और पौराणिक आख्यानों का बहुत असर होता है। बच्चों को लघु कथाओं में बेहद दिलचस्पी होती है। इसके माध्यम से उनके अंदर संस्कार भरा जा सकता है। इंटरनेट और स्मार्ट फोन के इस दौर में लघुकथाएं प्रासंगिक हैं। कह सकते हैं, आज समय की मांग है लघुकथा। अब नयी पीढ़ी को साहित्य से जोड़ने की जिम्मेदारी युवा साहित्यकारों के ऊपर है। लघुकथा बेहद कारगर माध्यम हो सकता है। लघुकथा के जरिए उनके भीतर साहित्य के प्रति दिलचस्पी जगायी जा सकती है।

लघुकथा सम्मेलन के दूसरे दिन अलग-अलग सत्रों में लघुकथा साहित्यकारों ने साहित्य की अलग-अलग विधाओं पर अपनी बात रखी। पटना विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. रास बिहारी ने कहा कि लघुकथा न्यूक्लीयर और मिसाइल है, जो सीधे पाठकों पर असर करती है। डॉ. अशोक कुमार ने कहा कि कबीर, तुलसीदास ने कभी ने कहा था क्या कि आओ मेरे साहित्य को पढ़ो। उनकी रचना में रचनाधर्मिता थी। यदि आपकी लेखनी में रचनाधर्मिता होगी तो लोग रचनाएं जरूर पढ़ेंगे। लघुकथा को फिलर के रूप में नहीं पढ़ा जाए। लघुकथा लिखना भी चुनौती है।

अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच के महासचिव डॉ. ध्रुव कुमार ने कहा कि सरकार को लघु कथा को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे। राज्य सरकार लघुकथा के लिए अलग से पुरस्कार की व्यवस्था करे। ताकि युवा कथाकारों में उत्साह जगे। लघुकथा की विधा को बच्चों से जोड़ने के लिए सरकार इसे सिलेबस में शामिल करे। रचना व शिल्प विषय लघुकथा मंच के अध्यक्ष डॉ. सतीशराज पुष्कारणा, कांता राय, संजू शरण ने अपनी बात रखी।

इस अवसर पर मधुदीप, कल्पना भट्ट, मालती महावर, सुषमा सिन्हा, मेहता नगेंद्र सिंह, अनिता राकेश, विभा रानी श्रीवास्तव, अहमद रजा हाशमी, रानी कुमारी, सरिता रानी, अर्चना चौधरी, रवि भूषण मुकुल, रितु जायसवाल, डा आर पी सिंह आदि को सम्मानित किया गया। स्त्री विमर्श पर मालती महावर, अवधेश प्रीत, वीरेंद्र कुमार भारद्वाज ने अपनी बात रखी। वहीं लघुकथा के वर्तमान व भविष्य पर मधुदीप, अनीता राकेश, कल्पना भट्ट, डॉ. अशोक कुमार, कल्याणी कुसुम सिंह व सुषमा सिन्हा ने अपने विचार रखे। मंच संचालन डॉ. ध्रुव कुमार ने किया।

उस्तादों के उस्ताद थे ग़ज़लकार रामप्रसाद 'महरिष' - महेंद्र नेह

कोटा (राजस्थान)। यहां प्रेस क्लब में पिछले दिनो द्वितीय स्मृति दिवस पर आयोजित गजल संध्या में आचार्य राम प्रसाद 'महरिष' को नगर के कवि-शायरों एवं बुद्धिजीवियों ने तहे दिल से याद किया। प्रेस क्लब अध्यक्ष गजेन्द्र व्यास ने कहा कि सृजनधर्मियों को सम्मानित कर कोटा सांस्कृतिक चेतना का नगर बनता जा रहा है। विकल्प के राष्ट्रीय महासचिव महेंद्र नेह ने कहा कि 'महरिष' गजल के उस्तादों के उस्ताद रहे। उनकी ख्याति पूरे देश में थी।

विकल्प के सचिव शकूर अनवर ने कहा कि डॉ जेबा फिजा को शाइरी परम्परा के रूप में हासिल हुई। उनकी शाइरी में देश की आधी आबादी का दर्द और एक खास तरह की कशिश है। रामनारायण हलधर किसान-चेतना के शाइर हैं। विकल्प जन सांस्कृतिक मंच के इस कार्यक्रम में 'महरिष' की पुत्री प्रतिभा सोरल ने शहर के दो गजलकारों रामनारायण हलधर और डॉ जेबा फिजा को 'महरिष गजल सम्मान' प्रदान किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ साहित्यकार बशीर अहमद मयूख ने सम्मान पत्र, समारोह के आयोजक चाँद शेरी, वेदप्रकाश और शिवशंकर नितिन ने स्मृति चिन्ह से रचनाकारों का सम्मान किया।

समारोह के दूसरे सत्र में गजल संध्या आयोजित की गई। इस सत्र की अधक्षता महेंद्र नेह ने और संचालन चाँद शेरी ने किया। विशिष्ट अतिथि के रूप में प्रसिद्ध शाइर शाहिद पठान एवं रउफ अख्तर ने अपनी गजलों से कार्यक्रम को गरिमा प्रदान की। गजल संध्या को बुलंदियों पर पहुँचाने वाले शाइर रहे गौरी शंकर सोनगरा, सुरेश पंडित, राम करण प्रभाती, ज्ञान गंभीर, सीमा तबस्सुम, मोहनलाल सेन, शकूर अनवर, चाँद शेरी, राम नारायण हलधर, रतन लाल वर्मा, डॉ ग्यास फाइज, राम स्वरुप गौतम रसिक, महेंद्र नेह, बशीर अहमद मयूख, अहमद सिराज फारूकी, वेद प्रकाश 'परकाश', प्रमिला आर्य, सलीम आफरीदी, सलीम रोबिन, हफीज राही, रौनक रशीद खान आदि। विकल्प के अध्यक्ष गीतकार किशनलाल वर्मा ने अतिथियों एवं रचनाकारों का आभार ज्ञापित किया।

शब्द-समारोह : रचना प्रकाशनोत्सव एवं सम्मान

कवि स्वप्निल श्रीवास्तव को 'केदार सम्मान'

बांदा (उ.प्र.)। यहां पिछले दिनो एक होटल में फैजाबाद के कवि स्वप्निल श्रीवास्तव को उनकी कृति 'जीवन की राह' के लिए इस वर्ष के 'केदार सम्मान' से समादृत किया गया। हर वर्ष प्रसिद्ध कवि केदारनाथ अग्रवाल की काव्य-प्रवृत्ति को समृद्ध करने वाले किसी न किसी सशक्त रचनाकार को यह सम्मान 'केदार स्मृति शोध संस्थान' की ओर से दिया जाता है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1996 में स्वयं कवि केदारनाथ अग्रवाल ने इस प्रतिष्ठित सम्मान की शुरूआत की थी। पहला केदारनाथ अग्रवाल पुरस्कार दुर्ग (छत्तीसगढ़) के नासिर अहमद सिकंदर को दिया गया था।

सम्मान समारोह के अध्यक्ष एवं ख्यात कवि राजेश जोशी ने कवि स्वप्निल श्रीवास्तव को वर्ष 2017 के केदार सम्मान से अलंकृत करते हुए कहा कि श्रीवास्तव ने अपनी रचना 'जीवन की राह' से कवि केदार की काव्य-प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया है। कवि केदारनाथ की रचना परंपरा को आगे बढ़ाती है। हिंदी आलोचक एवं कवि रघुवंशमणि त्रिपाठी ने केदारनाथ की रचनाओं को सराहते हुए कहा कि वह प्रगतिशील हिंदी कविता के स्तंभ थे।

समारोह के मुख्य अतिथि एवं लखनऊ के परिवहन आयुक्त कहानीकार प्रियदर्शन मालवीय ने कहा कि केदारनाथ अग्रवाल की रचनाओं में खेत-खलिहान की सोंधी महक है। उनमें मजदूर-किसानों का दर्द बोलता है। उनकी कविताएं गवाह हैं, मौजूदा हालात को उन्होंने दो दशक पूर्व ही अपने सृजन में उपस्थित कर लिया था। उनकी रचनाओं को तब समझा नहीं गया जबकि उन्होंने उस दौर में आज की परिस्थितियों का जिक्र कविताओं में कर दिया था। मालवीय के अलावा अंतरराष्ट्रीय वर्धा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर संतोष भदौरिया सहित कई अन्य कवि-साहित्यकारों ने भी सम्मान समारोह को सम्बोधित किया।

स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं कि किसी प्रिय कवि के नाम का सम्मान प्रिय कवि से प्राप्त करना मेरे लिए दुगुनी खुशी है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन की तरह मेरे प्रिय कवि रहे हैं, जिनकी उंगुली पकड़ कर लिखना सीखा। राजेश जोशी मेरे प्रिय और हमसफर कवि हैं। यह बात मैं केन नदी को गवाह मान कर कह रहा हूँ। मित्रों और पाठकों के बिना मेरी क्या हैसियत है। मैं उन्हें अपनी इस प्रसन्नता में शामिल करना चाहता हूँ।

'उत्कर्ष' के महोत्सव में कवि-साहित्यकारों का सम्मान

नई दिल्ली। युवा उत्कर्ष साहित्यिक मंच ने अपना चतुर्थ अखिल भारतीय साहित्य महोत्सव में पिछले दिनो जितेन्द्र निमोर्ही की अध्यक्षता एवं राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर के अध्यक्ष डॉ इंदु शेखर तत्पुरुष के मुख्य अतिथ्य में शायर मंगल नसीम को भारतेंदु हरिश्चंद सम्मान-2017 से सम्मानित किया।

शायर मंगल नसीम के अलावा महादेवी वर्मा श्रेष्ठ कवयित्री सम्मान डॉ रमा द्विवेदी को, भारत भूषण सम्मान कवि बालकृष्ण शर्मा बालेन्दु को, शरद जोशी सम्मान व्यंग्यका सुशील सिद्धार्थ को, गोपाल सिंह नेपाली सम्मान बसंत शर्मा को, श्रेष्ठ साहित्यिक संचालिका सम्मान नीरजा मेहता को, अमीर खुसरो सम्मान युवा कवि चंचलेश शाक्य को, मुंशी प्रेमचन्द्र सम्मान केदारनाथ मसीहा को, मिर्जा गालिब सम्मान अजय पाण्डेय को, कबीर सम्मान गोप कुमार मिश्र को, निराला सम्मान कवयित्री डॉ इंदिरा शर्मा को, श्रेष्ठ साहित्यिक

संचालक सम्मान कवि राजकिशोर मिश्र को और मीडिया सम्मान टू मीडिया मासिक को दिया गया।

इस अवसर पर संजय कुमार गिरि को साहित्यिक सूचनाएं प्रसारित कराने के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी सम्मान से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में देश के कोनेझकोने से आये लगभग दो सौ साहित्यकारों ने भाग लिया। कार्यक्रम के अंत में युवा उत्कर्ष मंच के अध्यक्ष रामकिशोर उपाध्याय ने आभार व्यक्त किया। इस अवसर पर विश्व हिंदी संस्थान कनाड़ा के अध्यक्ष प्रो.सरन घई, डॉ अशोक मैत्रेय, उपन्यासकार हरिसुमन बिष्ट, डॉ देवनारायण शर्मा, डॉ राम कुमार चतुर्वेदी, ओम प्रकाश शुक्ल आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

कैथल में साहित्य सभा का वार्षिक उत्सव

हरियाणा और पंजाब के रचनाकारों का सम्मान

कैथल (हरियाणा)। यहां पिछले दिनो आरकेएसडी कॉलेज में साहित्य सभा की ओर से वार्षिक उत्सव एवं सम्मान समारोह आयोजित किया गया। समारोह की अध्यक्षता हरियाणा साहित्य अकादमी के पूर्व निदेशक डा. चंद्र त्रिखा ने की। ट्रिब्यून के संपादक राजकुमार सिंह और वरिष्ठ साहित्यकार डा. हरबंस सिंह विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। समारोह में साहित्य विचार-विमर्श एवं बहुभाषायी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। विमोचन एवं सम्मान समारोह को सम्बोधित करते हुए प्रो. अमृत लाल मदान ने कहा कि संवाद के माध्यम से ही हर प्रकार की समस्या का समाधान हो जाता है।

साहित्य सभा की ओर से प्रो. अमृतलाल मदान, डा. चंद्र त्रिखा, राजकुमार सिंह, शिवानंद शर्मा, डा. हरीश झंडई, लहणा सिंह अत्री, अमरजीत कौर, डा. अशोक अत्री, सत्यप्रकाश भारद्वाज, रमेश पुहाल, डा. राजेंद्र मानव, सुशांत सुप्रिय, संदीप कपूर, संतोष गर्ग, गुरमुख सिंह बडैच, पत्रकार महीपाल सिंह, नील वशिष्ठ,ज्ञान प्रकाश पीयूष, अनामिका वालिया, रचना भल्ला, शिखा राणा आदि को सम्मानित किया गया। सम्मेलन में ज्ञानप्रकाश पीयूष, सत्यप्रकाश भारद्वाज, सुशांत सुप्रिय, महेंद्रपाल द्विवेदी, दिलबाग सिंह बाग, मेहरु, डा. तेजिंद्र, चेतन चौहान, लहणा सिंह अत्री, संतोष गर्ग, आदि ने भी अपनी रचना प्रस्तुत की।

समारोह के दौरान रमेश चंद पुहाल पानीपत की पुस्तक 'हरियाणा का लोक सांस्कृतिक जीवन', हरिकृष्ण द्विवेदी की पुस्तक 'कुरुक्षेत्र का प्रायश्चित', प्रो. अमृतलाल मदान के काव्य-संग्रह 'हे प्रभो', डा. हरीश झंडई के काव्य-संग्रह 'जिंदगी में धूप-छांव', लहणा सिंह अत्री की पुस्तक 'किस्मत के खेल', नरेश के उपन्यास 'एक सवाल, तीन तलाक' और राजेश चुघ की साहित्यिक पत्रिका 'सांझी सोच' का लोकार्पण किया गया। समारोह का समापन डा. चंद्र त्रिखा की अध्यक्षीय सम्बोधन से हुआ।

व्यंग्य बुंदेलखंड का नैसर्गिक गुण - ज्ञान चतुर्वेदी

भोपाल। भारत भवन में पिछले दिनो मंजुल प्रकाशन से प्रकाशित अनुज खरे के व्यंग्य संग्रह 'बातें बेमतलब' का विमोचन पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने किया। उन्होंने कहा कि बुंदेलखंड के लोगों का नैसर्गिक गुण व्यंग्य है। इनके रस-रस में और हर एक बात में व्यंग्य नजर आता है। व्यंग्य पर यहां के लोगों का नैसर्गिक हक है। इसके बाद डॉ चतुर्वेदी ने व्यंग्य पाठ भी किया। इस अवसर पर आर्टिस्ट बालेन्द्र सिंह बालू एवं कार्टूनिस्ट हरिओम तिवारी ने अलग अंदाज में प्रस्तुतियां दीं। शुरूआत राकेश सतनकर और चैताली शिवलिकर की बांसुरी व वायलिन की जुगलबंदी से हुई।

इस मौके पर मंजुल पब्लिकेशन के एमडी विकास रखेजा उपस्थित रहे।

जहीर कुरैशी, आलम खुर्शीद सहित 5 को आर्य साहित्य सम्मान : भोपाल। जहीर कुरैशी, आलम खुर्शीद सहित पांच गजलकारों को 2017 का आर्य स्मृति साहित्य सम्मान घोषित किया गया है। 16 दिसंबर को सम्मान समारोह में सम्मानित होने वाले अन्य तीन गजलकार हैं- कमलेश भट्ट कमल, डॉ. जया 'नरगिस' और माधव कौशिक। सम्मान के रूप में इन सभी गजलकारों को 10 हजार रुपए की राशि प्रदान की जाएगी।

पहला पटाखा पुरस्कार अशोक अंजुम को : अलीगढ़। कस्तूरी एजुकेशन सोसाइटी की ओर से धर्मपुर कोर्टयार्ड में आयोजित एक समारोह में कवि अशोक अंजुम को पहला 'पटाखा पुरस्कार' प्रदान किया गया। यह पुरस्कार वरिष्ठ हास्य-व्यंग कवि प्रेम किशोर पटाखा की अध्यक्षता में उनके 74वें जन्म दिवस पर प्रारंभ किया गया। सम्मान समारोह में कवि प्रदीप चौबे, डॉ सुरेश अवस्थी, सूर्य कुमार पांडेय, कमलेश द्विवेदी, शंभू शिखर, डॉ सोनरूपा विशाल, ममता वार्ष्णेय, महेंद्र शर्मा, पी.के. आजाद आदि कवियों ने कवि अंजुम को बधाई देने के साथ ही सरस काव्यपाठ किया। कार्यक्रम का संयोजन चित्रकार शिवाशीष ने किया।

छह कहानीकारों का पुरस्कार के लिए चयन : सुलतानपुर (उप्र)। माँ धनपती देवी स्मृति कथा साहित्य सम्मान 2017 के लिए कथा समवेत द्वारा आयोजित अखिल भारतीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता का परिणाम घोषित करते हुए आयोजक साहित्यकार डॉ शोभनाथ शुक्ल ने बताया कि सोनी पाण्डेय की कहानी 'मोरी साड़ी अनाड़ी न माने राजा' को प्रथम, गोपाल नारायण आप्टे की कहानी 'बुद्ध रिसॉर्ट' को द्वितीय और अरुण अर्णव खरे की कहानी 'मकान' को तृतीय पुरस्कार मिला है। तीन और कहानियों को विशेष प्रोत्साहन पुरस्कार के लिए चुना गया है। इन छह रचनाकारों को 20 दिसम्बर को सम्मानित किया जाएगा।

नवनीत पांडे को नानूराम संस्कर्ता राजस्थानी साहित्य सम्मान : बीकानेर (राजस्थान)। नानूरामसंस्कर्ता राजस्थानी साहित्य सम्मान समिति की ओर से नानूराम संस्कर्ता राजस्थानी साहित्य सम्मान 2017 के लिए बीकानेर के नवनीत पांडे का चयन किया गया है। समिति के संयोजक रामजीलाल घोड़ेला ने बताया कि तीन स्वतंत्र निर्णायकों की समिति ने नवनीत पांडे के राजस्थानी उपन्यास 'दूजो छैड़ो' का चयन किया है। श्री पांडे को यह सम्मान इसी माह दिसंबर में दिया जाएगा।

बुंदेली कवियों का सम्मान : डबरा (म.प्र.)। बुंदेली साहित्य और संस्कृति परिषद की ओर से जवाहरगंज स्थित गायत्री मंदिर में रायसेन के गीतकार अशोक श्रीवास्तव के मुख्य अतिथ्य में कवि सम्मेलन और सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में अशोक श्रीवास्तव, आरिफ शहडोली, अशोक निगम, प्रभात राय, भूपेन्द्र, जेपी तिवारी, पवन गुप्ता, बृजेश शर्मा, केशव नीखरा, सुरेन्द्र सिंह रावत को सम्मानित किया गया। कविसम्मेलन में श्याम श्रीवास्तव सनम, ब्रह्मदीन बंधू, जेपी तिवारी, राकेश वीरकमल, आरिफ शहडोली आदि ने अपनी रचनाओं का पाठ किया।

समय जितना कठिन, कविता उतनी ही जरूरी : जमशेदपुर (झारखंड)। बिष्टुपुर के तुलसी भवन में पिछले दिनो एक विमोचन समारोह को सम्बोधित करते हुए केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद (आंध्रप्रदेश) के प्रोफेसर डॉ. गजेंद्र कुमार पाठक ने कहा कि समय जितना मुश्किल होगा, कविता की उतनी ही जरूरत होगी। कविता इसलिए भी जरूरी है कि मनुष्यता बची रहे। शैलेंद्र अस्थाना के कविता संग्रह 'सवाल सिर्फ शब्द नहीं है' पर मुख्य अतिथि के रूप में उन्होंने कहा कि वे कविताओं में आग नहीं, फूल, स्त्री नदी खोजते हैं। इस शहर में एक लड़की को मारकर शव सूटकेस में रख दिया जाता है। इस शहर को साहित्य और कविता की बड़ी जरूरत है। कथाकार जयनंदन ने शैलेन्द्र अस्थाना को उनके पहले काव्य संग्रह के लिए धन्यवाद दिया। अहमद बद्र ने उनकी कविताओं की भाषा का विश्लेषण किया। डॉ. सी भास्कर राव ने दिया, डॉ. शांति सुमन, राजदेव सिन्हा आदि ने भी प्रकाशनोत्सव को संबोधित किया। संचालन डॉ. सुभाष गुप्ता ने किया।

कवि-पिता के सृजन ने आकार लिया, 'एक साल बीत गया'!

रुड़की (उत्तराखंड)। यहां पिछले दिनों कवि रामऔतार शर्मा की कृति 'एक साल बीत गया' का भव्य प्रकाशनोत्सव आयोजित किया गया। इस अवसर पर नगर के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ योगेन्द्रनाथ शर्मा की अध्यक्षता में हुए कवि सम्मेलन में सृजनधर्मियों ने अपनी रचनाओं से साहित्य प्रेमियों को आह्लादित किया।

कवि रामऔतार शर्मा के पुत्र एवं कविहृदय वरिष्ठ पत्रकार डॉ गोपाल नारसन बताते हैं कि वैसे तो उनके पिता एक सरकारी मुलाजिम थे लेकिन कभी-कभी स्वांतः सुखाय अपने दिल के उद्गार कागज पर भी उतार लिया करते थे। विडंबना ये रही कि उनके जीवित रहते उनके शब्द संकलित रूप में प्रकाशित नहीं हो सके। सारी रचनाएं उनकी डायरी के पन्नों पर ही पड़ी रहीं। किसी तरह प्रयास कर 'एक साल बीत गया' शीर्षक से उनकी कविताओं का संकलन पुस्तक के रूप में छपकर आ गया। कवि पिता को यही विनम्र श्रद्धांजलि है।

प्रसिद्ध कवि दुष्यंत कुमार के गृहजनपद बिजनौर में 28 जून 1932 को जन्मे और 13 अक्टूबर 2016 को रुड़की में दिवंगत हुए राम औतार शर्मा की रचनाओ में सर्व समाज का अक्स सहज ही चित्रित हुआ है। पुस्तक प्रकाशन में साहित्यकार हितेष कुमार शर्मा, स्व.शर्मा की धर्मपत्नी वीर बाला, पुत्र विनीत शर्मा एवं हेमन्त शर्मा की श्रमसाध्य सहभागिता रही। पिछले दिनो आयोजित प्रकाशनोत्सव में नगर के कवि-साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के साथ स्व.शर्मा को श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हुए उनके साहित्यानुराग का विनम्र स्मरण किया।

शिवानन्द 'सहयोगी' आग्रही रचनाकार- माहेश्वर तिवारी

मेरठ (उ.प्र.)। वाणी-मुजफ्फरनगर, शब्दिता-मेरठ, पूर्वांचल कल्याण समिति-मेरठ, अयन प्रकाशन दिल्ली और सहज प्रकाशन मुजफ्फरनगर की ओर से यहां पिछले दिनो चेम्बर आफ कामर्स में शिवानन्द सिंह सहयोगी के नवगीत संग्रह 'रोटी का अनुलोम-विलोम', 'शब्द अपाहिज मौनीबाबा' सहित तीन पुस्तकों का विमोचन समारोह आयोजित हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता उपन्यासकार डा. वेदप्रकाश 'वटुक' ने की। मुख्य अतिथि डा. माहेश्वर तिवारी ने कहा कि सहयोगी के नवगीतों में वस्तुपरकता है। यह कवि की अध्ययनशीलता और सजगता के कारण ही सम्भव हो सका है। वह एक आग्रही रचनाकार हैं, छान्दस विरोधी समय में भी ऐसी कविताएँ लिख रहे हैं। कार्यक्रम में डा. पशुपतिनाथ उपाध्याय, किशन स्वरूप, योगेन्द्र वर्मा 'व्योम', डा. मधु चतुर्वेदी, यशपाल कौत्सायन, डा. राम यज्ञ मौर्य, डा. नितिन सेठी, बृजस्वरूप 'पारदर्शी', संजय शुक्ल, अमित धर्मसिंह आदि ने भी कार्यक्रम को सम्बोधित किया।

शब्द-सूचना

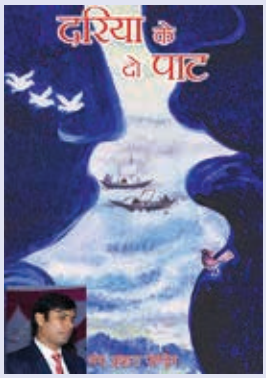

'दरिया के दो पाट' का प्रकाशनोत्सव : मसूरी (उत्तराखंड)। कवि-हृदय प्रिंसिपल जयप्रकाश पांडेय के सद्यः प्रकाशित 'दरिया के दो पाट' काव्य-संकलन का पिछले दिनो प्रकाशनोत्सव आयोजित किया गया, जिसमें कवि अशोक चक्रधर, अशोक मधुप, लक्ष्मीकांत वाजपेयी, रेलवे के फाइनेंस कमिश्नर बीएन महापात्रा, डाइरेक्टर जनरल (पर्सनल) आनंद माथुर, रेलवे राजभाषा के मुख्य निदेशक माही आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। बचपन से कविता-साहित्य में रुचि रखने वाले, मूलतः भिलाई (छत्तीसगढ़) निवासी आईआरपीएस जयप्रकाश पांडेय की रचनाएं देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं। वह रेल हिंदी पुरस्कार, अंबेडकर साहित्य सम्मान, आगमन साहित्य सम्मान आदि से समादृत हो चुके हैं।

साहित्य अकादमी का 'ग्रामालोक' मुशायरा : गया (बिहार) में पिछले दिनो साहित्य अकादमी की ओर से आमस प्रखंड के बैदा गांव में आयोजित मुशायरे की अध्यक्षता चिकित्सक डॉ. एस रजाउल्लाह ने की। मंच संचालन मशहूर अफसाना निगार व दर्जनों पुस्तकों के लेखक डॉ. अहमद सगीर ने किया। सगीर ने अपने संबोधन में कहा कि साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा बिहार में पहली बार बैदा गांव में इस तरह का कार्यक्रम कराया गया। उन्होंने बताया कि इसके लिए साहित्य अकादमी ने इशराक हमजापुरी, अहमद असलम, नूमानुल हक, इमरान अली और रजा शेरघाटीवी का नाम दिल्ली से ही ड्डोजा। उक्त लोगों के अलावा नसीमुद्दीन बैदावी ने ड्डी अपनी रचना पेश की।

शब्द-श्रद्धांजलि

अशोक आलोकः मुंगेर (बिहार)। हिन्दी गजल के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर अशोक आलोक हमारे बीच नहीं रहे। पिछले दिनो उनका निधन हो गया। वह पिछले आठ वर्षों से कैंसर से जूझ रहे थे। निधन से पूर्व रात्रि में अचानक दो बजे उनकी तबीयत बिगड़ गई। आनन-फानन में मुंगेर सदर अस्पताल में उन्हें ले जाया गया, जहां डॉक्टरों ने बेहतर इलाज के लिए ड्डागलपुर ले जाने की सलाह दी। इस बीच वह चल बसे। 'कविकुंड्डा' की विनम्र श्रद्धांजलि।

शिवमूर्ति त्रिपाठी 'चंद्रेश' : फैजाबाद। कवि शिवमूर्ति त्रिपाठी 'चंद्रेश' का पिछले दिनो हृदयाघात से निधन हो गया। उनका अंतिम संस्कार पैतृक गांव धौरहरा मुकुंदहा कुरावन मिल्कीपुर में किया गया। चंद्रेश की तीन साहित्यिक कृतियां 'ड्डार आएगी आंख तुम्हारी', 'जीने का अंदाज बदलिये' व 'अनजाने जीवन पथ पर' प्रकाशित हुई हैं। वे नए कवियों के लिए मार्गदर्शक की ड्डूमिका में रहे। 'कविकुंड्डा' की विनम्र श्रद्धांजलि।

पत्रालय

सपना देखा कि डाकिया 'कविकुंभ' का नया अंक दे गया है-प्राण शर्मा

लंदन से प्राण शर्मा लिखते हैं - रंजीता सिंह जी, रात को सपना आया था कि डाकिया 'कविकुम्भ' का नया अंक दे गया है। सुबह लैपटॉप पर जी-मेल का पृष्ठ खोला तो सबसे ऊपर 'कविकुम्भ' का पीडीएफ नजर आया। देख कर मन खिल उठा। 'कविकुम्भ' के अक्टूबर अंक की लगभग सभी रचनाएँ बड़ी आत्मीयता से पढ़ गया हूँ। मन से बार-बार 'वाहै निकल रहा है। रचनाओं का जादू सिर पर चढ़ कर बोल ही नहीं रहा है बल्कि मन में उतर भी रहा है। इसे अगर मैं आपके सम्पादन का कमाल कहूँ तो कोई अत्युक्ति नहीं है। दाग देहलवी का शैर है - 'साथ शोखी के कुछ हिजाब भी है, इस अदा का कहीं जवाब भी है।' यह शैर कविकुम्भै पर सटीक बैठता है।'

लीलाधर जगूड़ी ने साहित्य का सही पथ ढूढ़ा - बिर्ख खडका डुवसेर्ली

दार्जिलिंग से बिर्ख खडका डुवसेर्ली लिखते हैं- 'पत्रिका का अक्तूबर 2017 अंक मिला। संपादकीय में 'मन पर बैठीं बड़प्पन की बातें' सहमति के साथ संग-संग चलने का संदेश देती हैं पाठकों को। शब्द-संवाद में कवि लीलाधर जगूड़ी ने कविता की कसौटियों को चुनौती देकर साहित्य का सही पथ ढूढ़ा है । कविता की कल्पना और रचना के साथ जुड़ने के लिए मानवीय संस्कृति की जरूरत पर जोर भी दिया है ताकि कविता की संवेदनहीन न हो ।मेरे विचार में कविताएँ जिस तादात में लिखी जाती हैं, उसी रूप स्वीकृत शातद ही हो रही हैं । यह तो सच है कि कविकुंभ के जरिए आप कवियों को , उनके संवादों को और मानवीय अनुभूतियों का जोड़ने का संकल्प लेकर बढ़ रही है । इसलिए आप का अभियान अग्रसर जितना होता जाएगा , साहित्य के कुंभ का व्यापक विस्तार होता जाएगा।'

हिन्दी-उर्दू के अलग खाँचे, जैसे जातीय साहित्य का बँटवारा : अमरनाथ शर्मा

साल्टलेक, कोलकाता से अमरनाथ शर्मा लिखते हैं- 'कविकुंभ' के सितंबर-अक्टूबर अंक देखे। कविता को लेकर यह बिलकुल नई सोच की पत्रिका है। आजादी के बहुत पहले से ही हिन्दी और उर्दू के नाम पर हिन्दुस्तानी भाषा का बंटवारा और उसी के साथ हिन्दुस्तानी में रची जाने वाली कविता का भी बंटवारा समाजद्रोही शक्तियों का मुख्य विषय रहा है। आम जनता ने इसे कभी नहीं स्वीकारा है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी-उर्दू के अलग-अलग खाँचे जैसे जातीय साहित्य का बँटवारा करना है। हिन्दी और उर्दू एक ही जाति की एक ही भाषा की दो शैलियाँ है और इसीलिए दोनो शैलियों में रचा गया हमारा साहित्य इस देश की सबसे बड़ी जाति-हिन्दी जाति का साहित्य है। इस महत उद्देश्य को पूरा करने में आप की पत्रिका की ऐतिहासिक भूमिका सदा स्मरण की जाएगी। संपादन की सुरुचि भी पूरी तरह मुखरित हो रही है। विस्तार झ्रभय से मैने रचनाकारों पर कोई टिप्पणी नहीं की। इसका खेद है। मेरी शुभकामनाएं।'

लीलाधर जगूड़ी ने बार-बार सोचने पर विवश किया- अमृत लाल मदान

अमृतलाल मदान लिखते हैं- 'मैं 77 वर्षीय एक गुमनाम सा लेखक हूं। तीन कविता संग्रह तथा एक प्रबंध काव्य समेत 43 पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। कविकुंभ के दो अंक देखे तो समग्र सज्जा व सामग्री को देख चकित रह गया। सितंबर अंक में नवगीत के ठाठ हैं, तो अक्तूबर अंक में कविता अपने सारे रूपों में मौजूद है। सेंगर जी द्वारा लिखित सरस पर आलेख उनके निजी जीवन की कठिन उठ-पटक तो दिखाता ही है, उनके पाँच अनुपम नवगीतों की संवेदना निधि भी लुटाता है। आपने एक गुमनाम से कवि से परिचित कराया, आपकी उदारता है। राजेन्द्र यादव जैसे कठोर चेहरे का कवि रूप भी देखा। मैंने दोबार उनके दर्शन किये पर डर के कारण जरा दूर दूर से ही। एक बार तो पानीपत में वह भीष्म साहनी से उलझ पड़े कि 'तमस' का सीरियल क्यों बनने दिया। महाप्राण निराला को आपने उनकी प्रसिद्ध कविता के साथ याद किया। जगूडी जी का काव्य चिन्तन, बातचीत हो या फिर शब्द संवाद, कई वाक्य तो सूत्रों की तरह रेखांकित करने पड़े, सोचने पर विवश कर गये वे बार-बार। ऐसे निडर चिन्तक ही काव्य स्तर ऊपर उठाते हैं। सिनेमा के संदर्भ में 'न्यूटन' ने ध्यान खींचा।'

मुझे देवताले की हँसी बहुत याद आती रहेगी : हरि राम मीणा

जयपुर से वरिष्ठ कवि हरि राम मीणा लिखते हैं- कविता-केन्द्रित 'कविकुंभ' के सम्पादकीय में 'बाजार के जनद्रोही घेराव' की बात अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्यिक रचनात्मता ही इस घेरे को तोड़ने में सक्षम हो सकेगी, इतिहास इसका साक्षी रहा है। हमें शब्दों पर भरोसा है। आपने मेरे प्रिय कवि चंद्रकांत देवताले को श्रद्धा के साथ याद किया, मुझे बहुत कुछ याद आ रहा है, जब मेरे उज्जैन प्रवास के दौरान हम खूब बतियाये, चाहे उनके घर या जहाँ मैं ठहरा अथवा उनके संग घूमा-फिर; वो बावड़ी, जो मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता की सृजन भूमि बनी, या सांदीपनी आश्रम अथवा वो हाट जहाँ से हमने कविट फल खरीदा जिसकी जयपुर आकर उनके कहे अनुसार चटनी बनाकर खाई। बावड़ी की सीढ़ियों पर चढ़ते वक्त हमने यह तय किया था कि अपने अपने स्तर हम बावड़ी, ब्रह्मराक्षस' और मुक्तिबोध को केंद्र में रखकर एक एक स्वतंत्र कविता लिखेंगे। हमने लिखीं और जो डॉ हेतु भारद्वाज द्वारा सम्पादित पत्रिका 'अक्सर' में छपीं। मुझे देवताले जी की 'काव्यात्मक हँसी' बहुत याद आती रहेगी। उन्हें आत्मीय श्रद्धांजलि! बहरहाल, इस अंक के लिए मेरी बधाई और शुभकामनाएं।'

पत्रालय

काव्यालोचन पर पठनीय सामग्री : मंगलमूर्ति

लखनऊ (उ.प्र.) से कवि मंगलमूर्ति लिखते हैं - 'कविकुम्भ' का नवम्बर अंक भी मिला। कविता की ऐसी रंगारंग साज-सज्जा वाली कोई पत्रिका इतनी लम्बी उम्र में भी मैंने नहीं देखी थी, जिसमें कविता के सम्पूर्ण राष्ट्रीय परिदृश्य पर इतनी विविधता लिए हुए और काव्यालोचन पर भी इतनी रोचक और पठनीय सामग्री से सजी हुई अखिल भारतीय प्रसार की कोई दूसरी ऐसी पत्रिका हो। आपके इस प्रयास की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। कविता की इस तरह की पत्रिका को प्रकाशित-प्रसारित करना हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक सर्वथा अभिनंदनीय प्रयास है। मेरा सारा सहयोग और समर्थन आपके साथ है।'

समृद्ध और विचारोत्तेजक : डॉ. ब्रह्मजीत गौतम

गाजियाबाद (उ.प्र.) से डॉ ब्रह्मजीत गौतम लिखते हैं - 'आजकल की एक ही ढर्रे की पत्रिकाओं की भीड़ में यह एक बेहद रोचक और लीक से हटकर पत्रिका है। इसका न केवल बहिरंग, अपितु अन्तरंग भी अत्यंत समृद्ध और विचारोत्तेजक सामग्री से ओतप्रोत है। पत्रिका में अनेक आलेख ऐसे हैं, जो हमारा ध्यान आकर्षित कर उन्हें पढ़ने को बाध्य करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी सूचनाएं और समाचार। निष्कर्ष यह है कि 'कविकुम्भ' न केवल पठनीय बल्कि संग्रहणीय भी है'

काफी मेहनत से संभव हो सका - कल्पना बहुगुणा

देहरादून (उत्तराखंड) से कवयित्री कल्पना बहुगुणा लिखती हैं- 'निसंदेह 'कविकुंभ' स्तरीय पत्रिका है। अभी मैंने इसके तीन अंक देखे हैं। इस देशव्यापी पत्रिका की कामयाबी पर उत्तराखंड वासियों को गर्व है। इसके पीछे 'कविकुंभ' परिवार के गंभीर प्रयास हैं। काफी मेहनत से ऐसा संभव हो सका है। उम्मीद है सुधी पाठकों तक पत्रिका पहुंचती रहेगी।'

आम पाठकों के प्रति जिम्मेदार - सलीम अंसारी

आधार तल, जबलपुर (म.प्र.) से शायर सलीम अंसारी लिखते हैं - 'कविकुम्भ' का अगस्त अंक मिला है, जिसके लिए आप का बहुत-बहुत शुक्रिया। आज के नीरस और फूहड़ मनोरंजन प्रधान माहौल में 'कविकुंभ' हिंदी के आम पाठकों के प्रति जिम्मेदारी और ईमानदारी के साथ एक साफ-सुथरी और संजीदा साहित्य उपलब्ध करने वाली महत्वपूर्ण पत्रिका है, जिसके लिए आप और आप की टीम की लगन और मेहनत को श्रेय जाता है। मेरी तरफ से मुबारकबाद कुबूल करें। अंक संग्रहणीय है। बार-बार पढ़ने का मन करता है।'

नए रचनाकारों के लिए प्रेरक : पीयूष कांति

दिल्ली से पीयूष कांति लिखते हैं - ''कविकुंभ' का सितंबर अंक पढ़ने को मिला। इसकी रचनाएं, इंटरव्यू, लेख आदि नए रचनाकारों के लिए प्रेरणादायक और पथ-प्रदर्शक हैं। 'कविकुंभ' की टीम जिस लगन से साहित्य सेवा के इस दुष्कर कार्य को कर रही है, उसके लिए मैं आपका जितना साधुवाद करूं, कम ही होगा। देश-देशांतर के साहित्य साधकों की सामग्री निश्चित ही हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में और हिन्दी पाठकों और रचनाकारों को प्रेरित करने में अपना अभूतपूर्व योगदान दे रही है। मैं व्यक्तिगत रूप से इस महान कार्य के लिए पत्रिका का आभार प्रकट करता हूं।

'धर्मयुग' पढ़ते हुए 'कविकुंभ' का आभास - अवनीश त्रिपाठी

सुल्तानपुर से युवा नवगीतकार अवनीश त्रिपाठी लिखते हैं- मुझे तो इसके अंक शुरू से ही मिल रहे हैं। 'कविकुंभ' की सफलता की विशिष्टता इस बात में भी रही है कि शुरू से ही इसका मंतव्य साफ सा रहा है। विगत दिनों मैं 1965 के 'धर्मयुग' को पढ़ रहा था। लगा, जैसे 'कविकुंभ' की साम्यता हो उसमें। इस वाणिज्यिक युग में ऐसा साहित्यिक आभास कहाँ हो पाता है।'

स्थापित पत्रिकाओं में जगह - मनोज मधुकर

भोपाल (म.प्र.) से कवि मनोज मधुकर लिखते हैं - 'कविकुंभ' सुपठनीय उदीयमान पत्रिका है, जिसने तेजी से स्थापित पत्रिकाओं में अपनी जगह लगभग बना ही ली है। पत्रिका का भविष्य भी उज्ज्वल है। बशर्ते, पूरे भारत के साहित्यकार ईमानदारी से इसकी सदस्यता लेकर इसका सहयोग करें।'

निरन्तर अग्रसर रहे 'कवि कुंभ' - सुभाष वशिष्ठ

दिल्ली से सुभाष वशिष्ठ लिखते हैं - 'साहित्यिक पत्रकारिता और पत्रकारों की राहें प्रायः कठिन ही रही हैं, विशेष रूप से बिना किसी पुष्ट आर्थिक सहयोग/पीठ के, और बिना किसी प्रकार का समझौता किए (मूल मकसद से)। 'कविकुंभ' का अपने साहित्यिक मन्तव्य के साथ एक वर्ष पूरा कर लेना, निस्सन्देह प्रशंसनीय है। बधाई। शुभकामना, कि निरन्तर अग्रसर रहे 'कवि कुंभ'।

यह कठिन साहित्य-साधना है - रवि खंडेलवाल

इंदौर (म.प्र.) से रवि खंडेलवाल लिखते हैं- 'आर्थिक अभावों के बावजूद 'कविकुंभ' का सतत प्रकाशन निश्चित ही साहित्य के प्रति कठिन साधना को दशार्ता है' आज जबकि कवि, लेखक पत्रकार स्वयं को केवल छपते हुए देखकर अपनी साहित्य सेवा का बखान करते नहीं अघाते, कविकुंभ परिवार तो स्वयं उनके साहित्य को प्रकाशित करने में अपना श्रम और धन व्यय कर रहा है। आने वाले समय में यह पत्रिका बेहतर स्थान बनाने में कामयाब होगी।'

दिल्ली • हरियाणा • मप्र • छत्तीसगढ़ • राजस्थान • उप्र • उत्तराखंड • बिहार • झारखंड • प.बंगाल • पंजाब • हिमाचल • जम्मू-कश्मीर • महाराष्ट्र • गुजरात

कविकुंभ सदस्यता सहयोग राशि

वार्षिक ₹ 360	त्रय वार्षिक ₹ 1,100	पंच वार्षिक ₹ 2,100	आजीवन ₹ 10,000

* 'कविकुंभ' से संबंधित पत्राचार अथवा रचना सामग्री केवल 'यूनीकोड के मंगल फांट' में ही, कृपया इस ई-मेल पते पर अपेक्षित है - kavikumbh@gamail.com

* 'कविकुंभ' से संबंधित किसी भी तरह के संवाद के लिए मोबाइल नंबर 7983168101 / 7409969078 / 7250704688

कविकुंभ विज्ञापन मूल्य

आवरण अंतिम पृष्ठ रंगीन	₹ 1,00,000
आवरण पृष्ठ दो रंगीन	₹ 50,000
आंतरिक अन्य पूर्ण पृष्ठ रंगीन	₹ 35,000
आंतरिक अन्य अर्द्ध पृष्ठ रंगीन	₹ 20,000

शब्द आओ मेरे पास, जो बुलाएं जाओ उनके पास भी

RNI NO. UTTHIN/2016/71922

POSTAL REGD NO. UA/DO/DDN/23/2017-2019

27 दिसंबर 2017, स्मृति-शेष मिर्ज़ा ग़ालिब

हैं और भी दुनिया में सुख़न्वर बहुत अच्छे
कहते हैं कि ग़ालिब का है अन्दाज़-ए बयां और

BEING WOMEN
Be a complete women...

रंजीता सिंह
राष्ट्रीय अध्यक्ष, बीइंग वूमेन